कठोर और चमकीला अस्तर उतर गया है और हड्डी मृदु और लचकीली रह गई है। दूसरा प्रकार यह है कि हड्डी को चूल्हे में डाल अग्नि में जलाओ जब अस्थि भस्म हो जाए, तो उसे चूल्हे से निकालो। तुम देखोगे कि हड्डी जल कर चूना हो गई है। इससे ज्ञात हुआ कि अस्थि की रचना में दो प्रकार के पदार्थ होते हैं–एक तो शृंग (सींग) की श्रेणी का लचीला पाशविक पदार्थ जो तेजाब में लय हो जाता है। दूसरा चूना की श्रेणी का पार्थिव पदार्थ जो आग में चमकदार पदार्थ के भस्मीभूत हो जाने के पश्चात् शेष रह जाता है। सींग पदार्थ का मिश्रण भाग $\frac{१}{३}$ होता है और चूने के पदार्थ का भाग $\frac{२}{३}$ ।
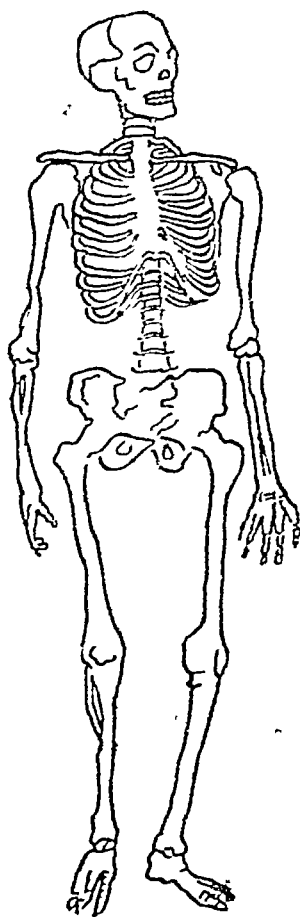
मनुष्य का अस्थिपिंजर

तुम देखोगे कि बालकों की हड्डियाँ युवकों की हड्डियों की अपेक्षा अधिक मृदु और लचकीली होती हैं। इसका कारण यह है कि बच्चों की हड्डियों में पार्थिव ( ख़ाकी ) पदार्थ अधिक होता है। परन्तु ज्यों-ज्यों अवस्था की वृद्धि होती है, पार्थिव पदार्थ न्यून होता

जाता है, और पाशविक पदार्थ अधिक होता जाता है। अस्थि कठिन और दृढ़ होती जाती हैं। पंजर या पसुली की हड्डियाँ विशेष रूप से कोमल और लचीली होती हैं, क्योंकि उन्हें साँस के लिए निरन्तर दबना और उभरना पड़ता है। यदि इस अस्थि-संख्या की रचना इस प्रकार मृदु न होती,तो साँस लेना दुस्तर हो जाता।

हड्डी को बीच से तोड़ डालो, तुम देखोगे कि बाहरी भाग कठोर, चिकना व चमकीला है और भीतरी भाग कोमल और कोष्ठमय। बड़ी हड्डियों के बीच में एक पोल होती है, जिसमें मज्जा भरी होती है। इसी मज्जा से मनुष्य-देह का भरण-पोषण होता है।

हड्डी के ऊपरी भाग पर रक्त की महीन महीन नसों का एक जाल बना होता है। इस जाल से हड्डी का भरण-पोषण होता है। इस जाल के कारण हड्डी का ऊपरी तल चिकना और चमकीला रहता है। यदि यह जाल हड्डी से पृथक् कर दिया जाए, तो अस्थि सूख जाएगी और खुरदुरी निकल आवेगी।

**नर-कँकाल के विशेष अवयव**

मनुष्य का ढाँचा दो सौ छयालीस हड्डियों से बना है। हड्डियों के विचार से शरीर के चार विभाग किए जा सकते हैं। (१) शिर, (२) रीढ़ व छाती, (३) शरीर के ऊपरी-भाग की हड्डियाँ, (४) शरीर के नीचे भाग की हड्डियाँ।

**सिर की हड्डियाँ**

मनुष्य का मुँह आठ हड्डियों के संघटन से बनता है। चेहरे मे १४ हड्डियाँ होती हैं, जो कपाल या खोपड़ी के चित्र से प्रकट है,इस प्रकार सिर में २२ अस्थिएँ हैं।

# करंक या खोपड़ी

## १—( उल्टी खोपड़ी )
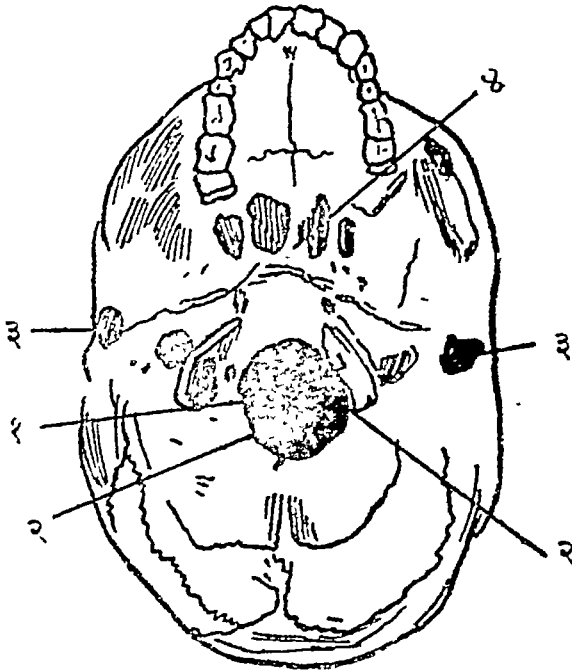
१—सुषुम्ना या मस्तिष्क मज्जा का विवर (छेद)।

२—दो चूलें जो रीढ़ की हड्डी के ऊपर के भाग पर रक्खी हुई हैं और जिस पर सिर इधर घूमता रहता है।

३—कान के छेद ( या श्रवण रन्ध्र)।

४—नाना प्रकार के छेद, जिनके भीतर से नसें व पट्ठे मस्तिष्क में घुसते हैं।

२—(सीधी खोपड़ी)
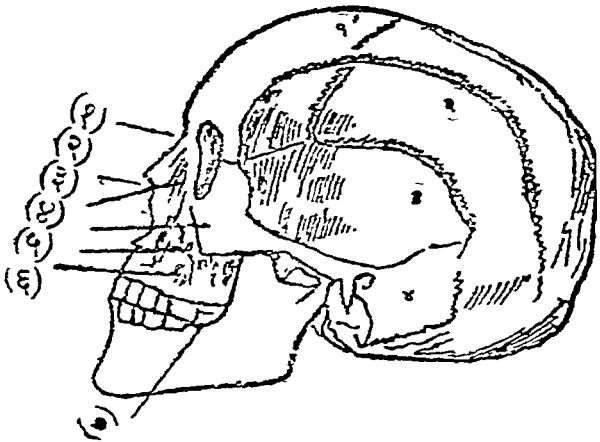
[अ] खोपड़ी की हड्डी—१ मस्तिष्क की हड्डी (१), २–सिर के ऊपरी भाग की हड्डियाँ (२), ३–कनपटियों की हड्डियाँ (२) ४–गुद्दी की हड्डी (१)। भीतरी हड्डियाँ, दो में एक तो खोपड़ी के नीचे और दूसरी एक हलकी छिद्रमय हड्डी, जो मस्तिष्क के सामने और नीचे नाक की छत में होती है।

[ब] चेहरे की ४ हड्डियाँ–(१) नाक के बाँसे की हड्डियाँ दो। (२) नाक की गुफ़ा के भीतर की हड्डियाँ, दो दोनों बगल होती हैं दो। (३) नथुनों की मध्यस्थ दीवार की हड्डी एक (४) आँखों के घेरों की भीतर दो हड्डियाँ जिनके अन्दर से आँसू आंखों में आते हैं, (५) गालों की हड्डियाँ दो। (६) ऊपर के जबड़े की हड्डियाँ दो (७) नीचे के जबड़े की हड्डी एक। मुँह के भीतर दो हड्डियाँ होती हैं जिनसे मिल कर तालू बनता है। सिर के नीचे वाली हड्डी में अनेक छिद्र होते हैं, जिनके द्वारा मस्तिष्क की नसें व पट्ठे शरीर में जाकर मिलते हैं, इस हड्डी के भीतर से एक बहुत बड़ा छेद होता है, जिसके भीतर से मस्तिष्क मज्जा सुषुम्ना मस्तिष्क से चल कर रीढ़ की नाली में प्रवेश करती है।

मनुष्य की खोपड़ी का निरीक्षण करोगे तो तुमको कपाल-कोटर की सन्धियों पर बहुत महीन २ रेखाएँ दिखाई देंगी।

लोगों का विचार था कि यह टेढ़ी मेढ़ी लकीरें, किसी प्रकार की लिखावट है। इसमें मनुष्य के कर्म का लेख रहता है। परन्तु वास्तव में, यह हड्डियों के सूक्ष्म जोड़ हैं। ७ वर्ष की आयु तक इन सन्धियों के बीच में अवकाश रहता है, क्योंकि इस आयु तक मस्तिष्क बढ़ता है। इसके पश्चात् यह जोड़ सँध जाते हैं और ऐसे जकड़ जाते हैं कि चाहे हड्डी फूट जाए परन्तु यह जोड़ नहीं टूटते।

कपाल-कोटर में चार हड्डियाँ और होती हैं। एक जिह्वा के मूल की हड्डी और तीन हड्डियाँ कान की। इन कर्णास्थियों में से एक की आकृति हथौड़ी की सी होती है। दूसरी की निहाई की भाँति और तीसरी रकाव के आकार की। तीनों हड्डियाँ शब्द को ब्रह्माण्ड या मस्तिष्क के भीतर पहुँचाने में सहायता देती हैं। इसका वर्णन इस पुस्तक के प्रथम भाग में आ चुका है।

मुख की अस्थियों में जवड़ों की अस्थियाँ विशेष रूप से वर्णनीय हैं। दोनों जवड़ों में सोलह दाँतों का चौखट लगा रहता है। परन्तु दाँतों की वतीसी मुख का यथार्थ अंग नहीं होती।

बचपन में जब बच्चा खाने पीने योग्य हो जाता है, तो यह दाँत निकलते हैं, और बुढ़ापे में गिर जाते हैं। वर्णन योग्य उनमें से नीचे का जबड़ा है जो एक अस्थि से निर्मित होता है। यह दोनों ओर ऊपर के जबड़े और कनपटी वाली हड्डी के बीच फँसा हुआ है। जब हम कोई वस्तु चबाते या मुँह चलाते हैं। तो नीचे का जबड़ा डोलता है।

**शरीर के मध्य भाग की हड्डियाँ**

शरीर के मध्य खंड में दो प्रकार की हड्डियाँ हैं। एक तो रीढ़ की हड्डी, दूसरे छाती का पिञ्जर जिसे पसुलियाँ भी कहते हैं।

रीढ़ की गुरियों की माला छब्बीस गुरियों से मिल कर बनी है। सब से ऊपर वाली गुरिया पर मनुष्य का सिर ठहरा रहता है। इन गोटों के बीच में एक पोल होती है, जो ऊपर से लेकर नीचे तक बराबर चली आती है, खोल के भीतर सुषुम्रा (मज्जा) रहती है जो मस्तिष्क से निकलती है। प्रकृति ने इसकी रचना में दृढ़ता के
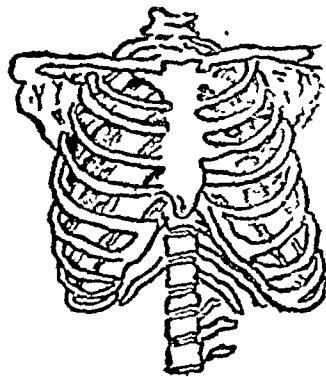
(१) वक्षोस्थियां छाती का ढांचा

सिवाय यह ध्यान भी रक्खा है, कि मनुष्य अपनी देह की सुगमता से इधर उधर घुमा सके। प्रत्येक दो गोटों के मध्य में एक कड़ी हड्डी होती है जो इन गुरियों को घिसने और रगड़ने से बचाती है और घूमने में सहायता देती है। रीढ़ की हड्डी की श्रेणी में छाती की ठटरी बँधी होती है। यह ठठरी चौबीस हड्डियों से बनी है जिन्हें पसुलियाँ कहते हैं। पसुलियाँ रीढ़ की श्रेणी या स्तम्भ के कटि वाले जोड़ों से निकलती हैं। सब ओर बारह बारह पसुलियाँ होती हैं, सात बड़ी व पाँच छोटी।

इन बारह पसुलियों में से दस तो एक दूसरे में गुरियों से जुड़ी होती हैं। दो दो पसुलियाँ दोनो ओर पृथक् पृथक् रहती हैं, पसुलियों की हड्डी अत्यन्त कोमल और लचकीली होती है। ... से साँस लेने में कष्ट न हो, ... फेफड़े घट बढ़ सकें, आगे
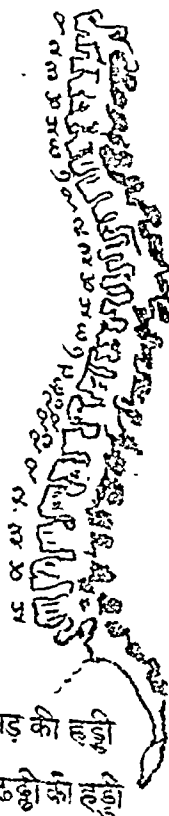
(२) रीढ़ की अस्थि या कशेरुका !

१ से ७ तक ग्रीवा की गुरियाँ
१ से १२ तक पीठ की गुरियाँ
१ से ५ तक कमर की गुरियाँ।

की ओर यह पसुलियाँ एक चौड़ी चिपटी और लगभग छः या सात इंच लम्बी हड्डी से जुड़ी होती हैं ", इस हड्डी को छाती की हड्डी कहते हैं। यह गले के पास चौड़ी है, और पीछे की ओर पतली व नुकीली, ऊपर की सात पसुलियाँ छाती की हड्डी के दोनों ओर कुर्री से जुड़ी होती हैं, तीन पसुलियाँ स्वयं परस्पर जुट कर सातवीं पसुली से आकर जुड़ जाती हैं और शेष दो पसुलियाँ इतनी छोटी होती हैं कि छाती की हड्डी तक पहुँच नहीं पातीं।

शरीर के ऊर्ध्व-भाग की अस्थियाँ

ऊपरी देह की हड्डियों मे हाथ और कन्धे की हड्डियों की भी गणना की जाती है। सब ओर को मिला कर ३२ हड्डियाँ होती हैं। जैसा कि हाथ की हड्डियों के चित्र में अंकित है।

कन्धे मे हँसुली की हड्डी सामने की ओर, और स्कन्ध की हड्डी काँधे के पीछे की ओर होती है। स्कन्ध की अस्थि यद्यपि पसुलियों के पिंजर के ऊपर होती है, परन्तु यह छाती की हड्डी और कशेरुका दो में से किसी में संयुक्त नहीं है। 'यह केवल मेद या रक्त की रेशों में लगी है, जो उसे अपनी परिस्थिति पर स्थायी रखते हैं और इधर उधर घूमने में सहायता देते हैं। उसके एक सिरे पर एक गड्ढे सरीखा बना रहता है, जिसमें बाहु की हड्डी का लट्टू रूपक

सिरा वैठ जाता है। वनावट के कारण हाथ सरलता से इधर उधर घूम सकता है।

पहुँचे के पश्चात हस्ततली या हथेली की पाँच महीन हड्डियाँ हैं। उसके नीचे हाथ की पाँचों उँगलियाँ हैं, प्रति ऊँगली तीन हड्डियों के जोड़ से वनी है, अँगूठे को छोड़ करके, क्योंकि वह दो ही हड्डियों के जोड़ से वना है। इस प्रकार पाँचों उँगलियों में सव मिला कर १४ हड्डियों के पोरे होते हैं।
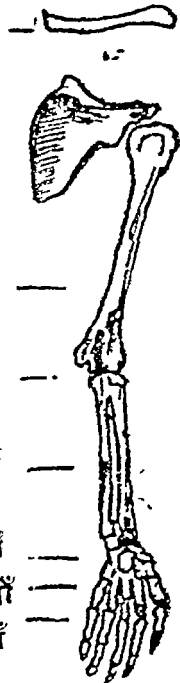


(हाथ की हड्डियाँ)

शरीर के नीचे वाले खंड में कूल, रान, पिण्डुली और पाँच

**शरीर का अधोभाग**

की हड्डियाँ होती हैं। सव हड्डियाँ मिल कर ३१ हैं। जैसा कि नीचे के भाग के चित्र से स्पष्ट होगा। तुम देखोगे कि निम्न भाग की हड्डियों में ऊपरी भाग की अपेक्षा एक अस्थि की त्रुटि है। दूसरा अंश इस अंग की पेड़ू की खत्ती है। पृष्ठ देश नितम्व (चूतड़) और हन्वस्थि (ढढ्ढी की हड्डी) के मिलने से वनती है। कूल की दोनों हड्डियों में दोनों ओर अँटका है, पेड़ू की खत्ती ४ हड्डियों से मिलकर वनी है।

कूले की हड्डी एक——

जानु या रान की हड्डी एक——

—गट्टे का जोड़

चिपनी की अस्थि एक——

पिंडुली की हड्डी एक ——

गुल्फ का जोड़——

—पार्ष्णि या एड़ी की हड्डी एक

गुल्फ की हड्डियाँ ६——

पोरे १४——

—तालू की हड्डियाँ पांच
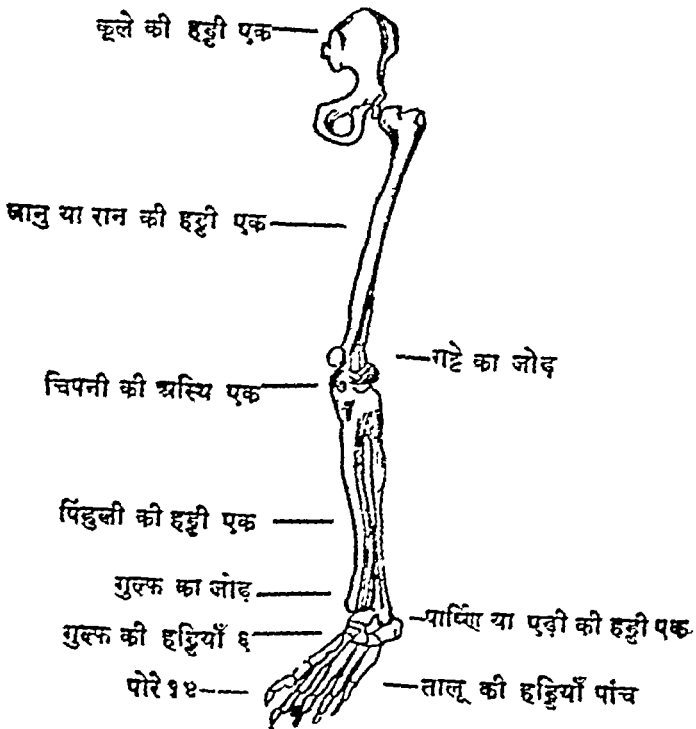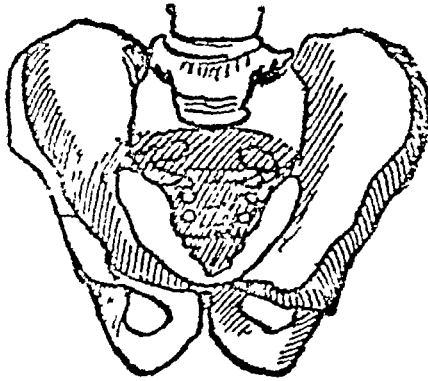
शरीर के अधो-अंग की हड्डियाँ, ऊपरी अंग की अपेक्षा, अधिक दृढ़ होती हैं। कारण यह है कि, शरीर के इस अङ्ग को अन्यान्य अंगों की अपेक्षा अधिक बोझा लादना पड़ता है। नीचे के खंड में कूले की हड्डी का विशेष महत्व है। इसी पर सम्पूर्ण टाँग संचालित रहती है। इस अस्थि के निम्न भाग में एक छेद होता है, जिसके भीतर से नाड़ियाँ जाती हैं। दोनों ओर के किनारों पर गहरा खर्पर बना रहता है। इसके भीतर भीतर रान या जानु की अस्थि का गोलाकार सिरा आकर बैठ जाता है जो रेशों की सहायता से अपनी अस्थि पर टिका रहता है। जानु की अस्थि शरीर की सभी अस्थियों में अधिक भारी है। यह ऊपर की ओर कूले की हड्डी से सम्बद्ध रहती है, और नीचे की ओर किंचित् चौड़ी हो कर दो लट्टूओं की आकृति में हो जाती है, जिस स्थान पर रान की अस्थि पिण्डली की अस्थि से मिलती है, उसकी संधि की रक्षा के लिए, उसके ऊपर की हड्डी की एक चकती चढ़ी रहती है। इसे चिपनी की हड्डी कहते हैं।

पिण्डुली की हड्डी भी कलाई की हड्डी की भाँति गट्टे के नीचे उतर कर दो खंडों में विभक्त हो जाती है। खड़े होने में, शरीर का ज्यादा भार उसके पिछले भाग को सहन करना पड़ता है। गुल्फ के जोड़ में ७ हड्डियाँ होती हैं। एक हड्डी बड़ी होती है, जो ऐंड़ी की हड्डी कहलाती है। और छः छटी हड्डियाँ उनके पश्चात् तलवे की पाँच हड्डियाँ हैं। और पैरों की चौदह॥

## अभ्यास

(१) नर-कँकाल या शरीर ढाँचा की व्याख्या करो, और उसके प्राकृतिक अवयवों का वर्णन करो।

(२) अस्थि की रासायनिक बनावट वर्णन करो, और अपने वर्णन को क्रियात्मक अनुभव से सिद्ध करो।

(३) बुड्ढों व बच्चों की अस्थियों की तुलना करो।

(४) अस्थि क्या वस्तु है, और उसके भरण-पोषण के लिए क्या प्रबन्ध है ?

(५) अस्थियो कितने प्रकार की होती हैं, और उनकी बनावट में क्या अन्तर हुआ करता है ?

(६) नर-कँकाल में कुल कितनी हड्डियां होती हैं, और उनके विशेष खण्ड कितने हैं। और कितनी अस्थियों से बने हैं ?

(७) सिर की हड्डियों की दशा वर्णन करो।

(८) कशेरुका और वक्षोस्थि का वृत्तान्त लिखो।

(९) शरीर के ऊर्ध्व-भागों और अधो-भागों की अस्थियों की तुलना करो व समानता करो।

(१०) शरीर के ऊपर के खण्ड में नीचे के खण्ड की अपेक्षा कौन कौन सी हड्डियाँ अधिक होती हैं। और कौन कौन सी हड्डियाँ नहीं होती ?

(११) पसुली की हड्डी की पिण्डुली की हड्डी से तुलना करो।

(१२) जबड़े की हड्डियों का वर्णन लिखो।

(१३) कपाल कोटर ( कासा-सर ) की हड्डियों का वर्णन करो।

(१४) कान में कितनी हड्डियाँ होती हैं, और उनका क्या काम है ?

(१५) छाती की ठठरी (पिंजर) और रीढ़ के हड्डी (कशेरुका) से शरीर के कौन कौन से अंगों की रक्षा होती है ?

# दूसरा पाठ

## जोड़ या सन्धि

तुम जानते हो कि मनुष्य का ढाँचा नाना प्रकार की हड्डियों से बना है। जिस स्थान पर एक हड्डी दूसरी हड्डी से जुड़ती है, उसको जोड़ या "सन्धि" कहते हैं। वह पतली नसें जो इन हड्डियों को परस्पर बाँधती हैं, "सूक्ष्म तन्तुएँ" कहलाती हैं। बकरी तथा किसी और पशु की हड्डी ले कर देखो, तुम्हें ज्ञात होगा कि हड्डी के सिरे पर श्वेत रेशेदार तागे या नसें लगी हुई हैं, यही सूक्ष्म तन्तु हैं। सूक्ष्म तन्तु हड्डियों के हिलने डुलने में सहायता देती हैं और उनको उचित स्थान पर स्थित रखती हैं। विद्वानों ने मनुष्य देह में छोटी बड़ी सूक्ष्म तन्तुएँ १८० के लगभग बताई हैं।

प्रकृति ने संधियों की आकृति अंगों के उपयोग के अनुसार रक्खी है, जिस शरीराङ्ग की हड्डियों की हिलने डुलने की

आवश्यकता नहीं होती, उन हड्डियों के जोड़ों को बिना किसी सूक्ष्म तन्तु के सुदृढ़ रूप से जकड़ दिया है। उदाहरण के लिए, कपाल कोटर की हड्डियों को लो। दूसरे प्रकार के वह जोड़ हैं, जहाँ कि हड्डियों को हिलना डोलना पड़ता है। ऐसे जोड़ों में प्रकृति ने कौशल दिखलाया है। दो परस्पर अस्थियों के सिरों पर एक कोमल, लचकीली हड्डी लगा दी है और उनको समतल करके इन में सूक्ष्म तन्तु लगा दिए हैं। यह इन हड्डियों को हिलने डुलने में सहायता देती हैं। कुर्री हड्डी इस प्रयोजन के लिए होती है, कि दोनों अस्थियों के सिरों पर परस्पर संघर्ष न हो। यही ढंग प्रायः मशीनों के कल पुर्जे लगाने में बरता जाता है। यक्के के पहिये में तुमने देखा होगा कि धुरी में लोहे का पत्तर या चमड़े की गोल चकती लगा देते हैं। उसका तात्पर्य यही होता है कि पहिया दबकर बैठ जाय और घिसने न पाए। जिस प्रकार यन्त्रों के पुर्जों को घिसने से बचाने के लिए और सुगमता-पूर्वक चालू रखने के लिए, तेल दिया जाता है उसी प्रकार शरीर ढाँचा की अस्थियों के लिए, सूक्ष्म तन्तुओं के भीतरी तल पर कोमल और चिकनी झिल्ली का प्रबन्ध किया है, यह झिल्ली तेल की कुप्पी है, जिससे सर्वदा अण्डे की सुपेदी की भाँति श्वेत लुबाब निकला करता है, जो इन जोड़ों को चिकना रखता है।

अस्तु सूक्ष्म तन्तुओं की दृष्टि से हड्डियों के दो जोड़ हुए
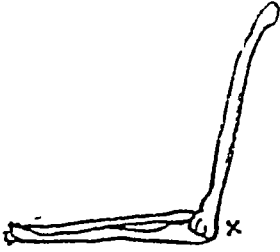
(३) कब्जादार सन्धियाँ

(४) गोली और खत्ती वाली संधियाँ

(५) घूमने वाली संधियाँ

(६) अपूर्ण चल संधियाँ

## अभ्यास

(१) सूक्ष्म तन्तुओं और संधियों की व्याख्या करो और बताओ कि प्रकृति ने इन वस्तुओं को किस अभिप्राय से बनाया है?

(२) हमारे शरीर की कुल सूक्ष्म तन्तुएँ कितनी हैं, और इनका काम क्या है?

(३) संधियों की सहायता से तुम अपनी देह की अस्थियों को कितने प्रकार से हिला डुला सकते हो?

(४) हड्डियों की संधियां कितने प्रकार की होती हैं? प्रत्येक जोड़ी की बनावट ( आकृति ) की व्याख्या करो।

(५) कुर्री हड्डियाँ शरीर के किस किस खंड में होती हैं और उनका काम क्या है?

(६) हड्डियों को चिकनी रखने के लिए प्रकृति ने क्या प्रबन्ध किया है, और उससे क्या लाभ प्राप्त होता है?

(७) सूक्ष्म तन्तुओं के विचार से संधियों के कितने प्रकार हैं? प्रत्येक की व्याख्या करो और उदाहरण दो।

(८) चल संधियां कितने प्रकार की होती हैं? प्रत्येक की व्याख्या करो और उदाहरण दो।

(९) अपूर्ण चल संधियों से तुम क्या समझते हो, और ऐसे जोड़ शरीर में कहाँ कहाँ पाए जाते हैं, और बनावट में कौन कौन सी विशेष बात पाई जाती है?

---

# तीसरा पाठ

## कोषाणु और ओले (पेशियाँ)

मनुष्य की देह के अंग प्रत्यग को यदि अणुवीक्षक (खुर्दबीन) यन्त्र द्वारा देखा जाय तो परिणाम निकलेगा कि मनुष्य का शरीर सूक्ष्माति सूक्ष्म थैलियों के मिलने से बनता है, इन कोषाणुओं के मिलने और जुड़ने से अंगों की विविध आकृतियाँ और रूप प्रकट होते हैं।

**मनुष्य का शरीर**

छोटे से छोटे प्राणधारी जीवों का उदाहरण "अमीबा" है, जो शक्ति-शाली अणुवीक्षक यन्त्र द्वारा दिखाई पड़ता है। निरीक्षण करने पर ज्ञात होगा, कि "अमीबा" केवल एक थैली का बना हुआ जीव है, जिसमें संचालन की शक्ति है, हाथ पाँव भी हैं। साँस भी लेता है। आहार को प्राप्त करने और उसे ग्रहण करने का गुण भी है। बाल-बच्चे भी पैदा करता है और अन्त में मर जाता है।

**अमीबा चैतन्य केन्द्र**

यह आश्चर्यकारी जीवन-तत्व एक अणु से भी सूक्ष्म होता है। और बड़े से बड़े कोष का परिमाण एक इंच के $\frac{1}{500}$ भाग के बराबर होता है।

जीवन-तत्व व जीवन-मूल

यदि कोषाणुओं की रचना पर ध्यान दिया जाए, तो ज्ञात होगा कि, प्रत्येक कोषाणु के चारों ओर एक हलका पीले रंग का, पिघली हुई लसी ऐसा पदार्थ होता है। यह महीन झिल्ली के वेष्टन में भरा होता है। इस तरल पदार्थ को "जीवन-मूल" कहते हैं। इस जीवन-तत्व के बीच में एक सूक्ष्म परमाणु होता है। जो "जीवन-मूल" कहलाता है। परन्तु ऐसे कोषाणु भी होते हैं। जिनके चारों ओर जीवन तत्व न हो, अथवा जीवन तत्व हो, और जीवन-मूल न हो। परन्तु एक सजीव कोष के लिए दोनों पदार्थों का होना आवश्यक है।

जीवन-तत्व व जीवन मूल की रासायनिक रचना

जीवन-तत्व व जीवन-मूल दोनों बनावट में एक समान होते हैं। दोनों की रचना में, एक परम सूक्ष्म महीन जाल बना होता है, और उस जाल के छिद्रों के एक द्रव द्रव्य भरा होता है। इस द्रव-द्रव्य की रासायनिक रचना में अन्तर होता है। क्योंकि प्राणधारी कोष के जीवन का आधार जीवन-मूल ही है। यदि जीवन-तत्व के जीवन-मूल का अंश पृथक् कर दिया जाए, तो वह अति शीघ्र प्राण रहित हो जाए।

हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं कि, मनुष्य का शरीर कोषाणुओं के आपस में मिलने से बना है।

**मछलियों की बनावट**

यहाँ यह बता देना आवश्यक है, कि यह मिलाप ३ रूप से होता है। एक तो यह कि, कोषाणु एक दूसरे से खूब मिल जाएँ। मछलियों की बनावट में यही रूप है। दूसरा रूप यह है कि, एक कोष का सिरा दूसरे कोष के सिरे से मिल जाए। यह रूप, स्नायु, धमनियों इत्यादि में हैं। तीसरा रूप यह है, कि एक कोष की शाखा दूसरी कोष-शाखाओं से संयोजित हो, यह रूप ओलों (पेशियों) की बनावट में पाया जाता है।

ज्ञात हुआ कि, हमारे शरीर के ओले विविध भाँति के कोषाणुओं के इसमे मिलने से बने हैं। ये

**ओलों के लाभ और उनकी आवश्यकता**

शरीर-ढाँचा को ढाँक कर देह को सुडौल बनाते हैं, और भीतरी अवयवों को उष्णता व शीत से रक्षा करते हैं, जैसा कि नीचे के चित्रों से सूचित होता।

मछलियों की कुल संख्या ४९८ है। आधी तो शरीर के एक ओर और आधी दूसरी ओर, जैसा कि

**मछलियों के ओलों की संख्या**

निम्नाङ्कित सारिणी से ज्ञात होगा—

१—सामने के शरीरार्द्ध के ओले
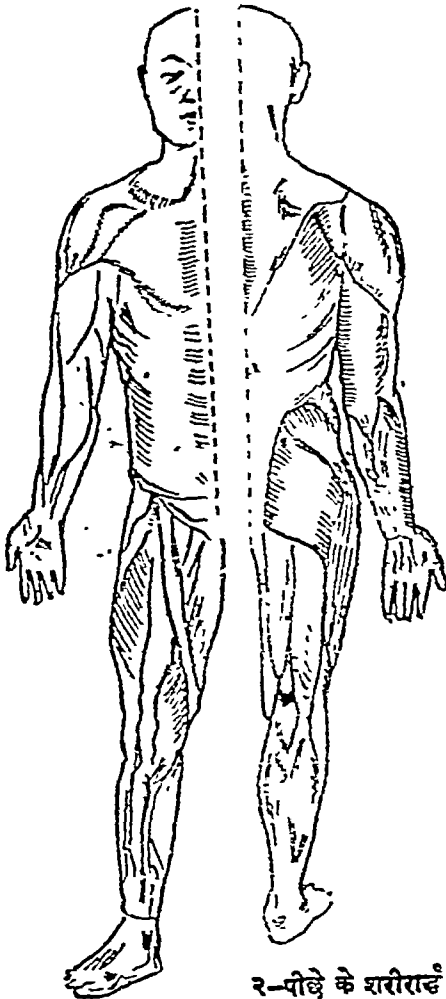
२—पीछे के शरीरार्द्ध के ओले

(१) शिर और ग्रीवा की मछलियाँ... ८५

(२) पेट और पीठ की मछलियाँ ......५०

(३) हाथ की मछलियाँ और ओले ...५४

(४) टाँग की मछलियाँ और ओले ...६०

कुल २४९

ओलों के नाना-रूप होते हैं । कोई लम्बे होते हैं । जैसे हाथ और पाँव के, कोई चौड़े और चिपटे जैसे पेट व रीढ़ के ओले । कोई पतले होते हैं जैसे पपोटों के और कतिपय (कोई) ओले मोटे होते हैं यथा—चूतड़ों के ओले । "ओलों" को साधारण-जन "मछली" या "चुहिया" भी कहते हैं । पेशियाँ यही हैं ।

ओलों के विविध-रूप

बनावट में प्रत्येक ओला ३ खण्डों में विभाजित हो सकता है—दोनों ओर के दो सिरे और बीच का खण्ड । ओले सिरों पर महीन होते हैं । उनका मध्य-भाग स्थूल होता है । मध्य-भाग में माँस होता है, और दोनों सिरों पर श्वेत नस होती है, जो एक सिरे पर एक हड्डी से लगी होती है, और दूसरे सिरे पर दूसरी हड्डी से । उन्हीं सूक्ष्म तन्तुओं के कारण हड्डियों में हिलने व डोलने-फिरने की योग्यता उपजती है । मांस में फैलने और सिकुड़ने की शक्ति होती है ।

ओलों की बनावट और उपयोगिता

सिकुड़ने से ओला फूल जाता है; और मछली निकल आती है । फैलने से पुनः यथार्थ दशा में आ जाता है, जैसा कि

नीचे दी हुई हाथ की आकृति से स्पष्ट होगा—

(२) सिकुदे हुए हाथ के ओले
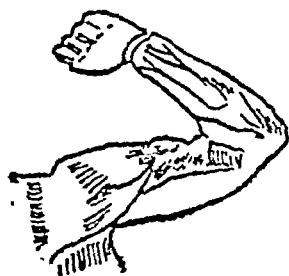
(१) फैले हुए हाथ के ओले

यदि किसी उपांग के एक ओर सिकुड़ने वाला ओला है, तो दूसरी ओर उसके विरुद्ध फैलने वाला ओला भी विद्यमान है। इस प्रकार अंग दोनों काम सुगमता से कर सकते हैं।

ओलों को लचकीला रखने के लिए उनमें एक रस पहुँचता रहता है, जो उन्हें कार्योपयोगी बनाता है। मरने के पश्चात् जब रक्त-संचार बन्द हो जाता है, तो यह रस भी जम जाता है। इसके कारण ओले कठोर हो जाते हैं, और देह अकड़ जाती है।

संचालन और हिलने-डुलने के विचार से ओले दो प्रकार के होते हैं—एक वह ओले जो हमारे अभिप्रायों के अनुसार हिलते डुलते हैं।

ओलों की चालन-शक्ति

यह ओले शरीर के ऊपरी खण्ड में पाए जाते हैं। दूसरे यह ओले हैं, जिनकी हलने-चलने की शक्ति हमारे अभिप्रायों पर निर्भर नहीं है। यह ओले शरीर के आन्तरिक अंगों हृदय, फेफड़े, पाकस्थली (मेदा) इत्यादि में पाए जाते हैं॥

## अभ्यास

(१) माँस की बनावट कैसी है, और उसके सम्बन्ध में तुम क्या जानते हो ?

(२) "अमीबा" क्या वस्तु है, उसकी पूरी व्याख्या का वर्णन करो।

(३) "जीवन-तत्व और जीवन-मूल्य" से तुम क्या समझते हो, प्रत्येक का विस्तीर्ण वर्णन करो और बताओ, कि ज़िन्दगी के लिए इन वस्तुओं का क्या महात्म्य है ?

(४) हमारे शरीर की खाल, ओले और सूक्ष्म तन्तुएँ किस प्रकार बनती या बनते हैं ?

(५) ओले से क्या लाभ प्राप्त होता है ?

(६) हमारे शरीर के भिन्न भिन्न अवयवों में कितने ओले हैं ?

(७) ओले शरीर में कितने प्रकार के पाये जाते हैं ?

(८) ओले का रचनात्मक रूप कैसा होता है ?

(९) ओलों में कोमलता और लचक किस प्रकार उत्पन्न होती है ?

(१०) मनुष्य का शरीर मर जाने के उपरान्त कड़ा क्योंकर पड़ जाता है ?

(११) हिलने डुलने के विचार से ओलों के कितने प्रकार होते हैं ? एक की विस्तृत व्याख्या करो।

(१२) हड्डियों और मछलियों में क्या सम्बन्ध है, और एक दूसरे को किस भाँति से सहायता देती हैं।

# चौथा पाठ

## आन्तरिक अँग

### १. (क)—हृदय या दिल

हृदय एक शुण्डाकार अँग है, जो नाड़ियों से बनता। इसके भीतर छिद्र होते हैं, जिन के भीतर से रक्त दौड़ा करता है। हृदय पसुलियों के पिंजर में ठीक छाती की हड्डी के नीचे दोनों फेफड़ों के बीच लगा रहता है। उसका चौड़ा खण्ड ऊपर की दिशा में दाहिनी ओर की दूसरी पसली से मिला रहता है, और नुकीला खँड नीचे की दिशा में बाईं ओर पाँचवीं और छठी पसुली तक पहुँचता है।

**हृदय की आकृति और रचना**

लोगों का यह विचार है कि, हृदय वाम भाग में रहता है, मिथ्या है। हृदय वक्षस्थल (सीने) के ठीक केन्द्र में अवस्थित है। महा धमनियों के अवलम्बन से धुगधुगी या आन्दोल की भाँति टंगा रहता है। परन्तु जिस दशा में वह लटका हुआ है उसके कारण तिर्य्यक या तिरछा पड़ता है। उसका नीचे का खँड वाम पार्श्व की पसुलियों तक पहुँचता है, और इस कारण हृदय के निम्न भाग में, ध्वनि या चमक उत्पन्न होती है जिसको "हृदय की धड़कन" कहते हैं।

( हृदय का चित्र—वक्ष के आवेष्टन में और फेफड़ों के केन्द्र में )
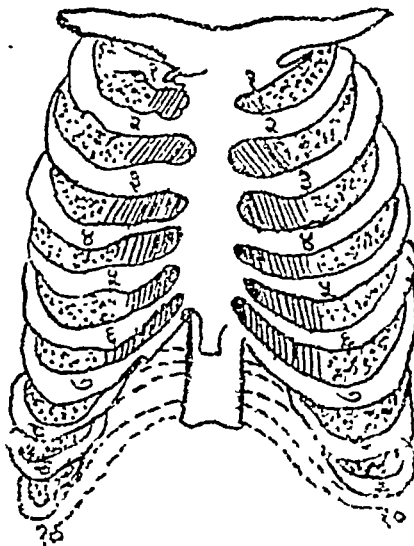
( हृदय का चित्र फेफड़ों के केन्द्र में )
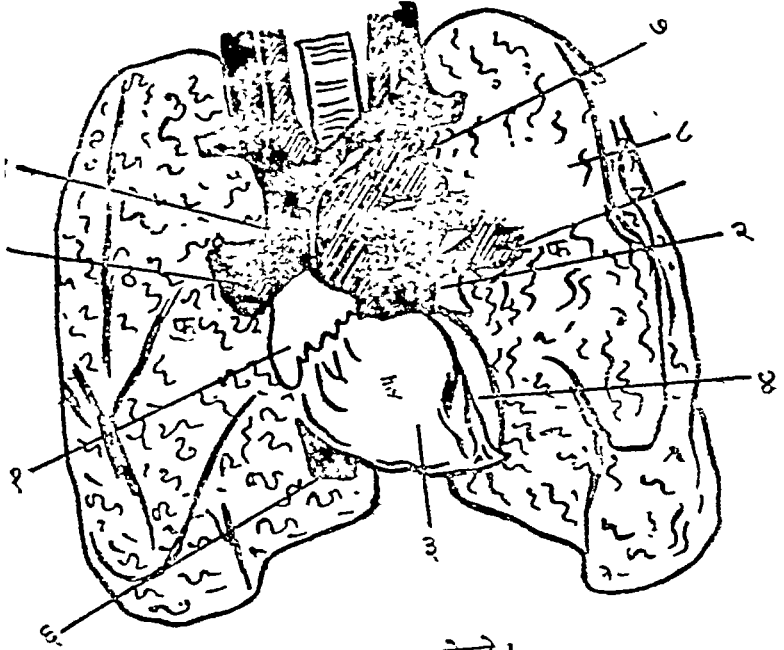
ह = हृदय। फ = फेफड़े।

( चित्र का वर्णन )

१—दाहिना ग्राहक कोष्ठ।
२—बायाँ ग्राहक कोष्ठ।
३—दाहिना क्षेपक कोष्ठ।
४—बायाँ क्षेपक कोष्ठ।
५—ऊर्ध्व महाशिरा।
६—अधोगा महाशिरा।
७—महाधमनी।
८—फुस्फुसीय धमनी।
९—टेंटुवा—( नरख़रा )
१०—फुस्फुसीय शिराएँ।

हृदय की लम्बाई चौड़ाई यद्यपि अवस्था के साथ बढ़ती रहती है, परन्तु साधारणतया एक मनुष्य का हृदय, लगभग ५ इंच लम्बा, ३ इंच चौड़ा, और २½ इंच मोटा होता है। पुरुषों का हृदय स्त्रियों के हृदय की अपेक्षा डीलडौल में दीर्घ होता है।

हृदयच्छद या हृदय आवरण

हृदय के ऊपर एक थैली या वेष्टन चढ़ा होता है, जिसे "हृदयच्छद" कहते हैं। हृदय, वस्तुतः इस थैली के भीतर लटका रहता है। हृदय की नोक उस थैली की पेंदी में होती है और हृदय की पेंदी उसकी नोक में होती है। यह आवरण हृदय पर पूर्ण रूप से चिपटा नहीं रहता। इस आवरण की नोक भर हृदय की पेंदी से चिपकी रहती है, शेष खंड अलग रहता है।

हृदयच्छद भी झिल्लियों से बना होता है, भीतर का पर्दा एक महीन झिल्ली का होता है, यह हृदय पर लिपटा होता है। ऊपर का पर्दा रेशेदार बनावट का थैली की भाँति होता है। इसमें एक पीलापन मिला हुआ रस भरा होता है, जिससे दिल के धड़कने में यह दोनों पर्दे परस्पर संघर्ष न करें, यह दोनों पर्दे भी हृदय की जड़ के पास परस्पर जुड़े होते हैं।

(हृदय का कटा हुआ दाहिना भाग)
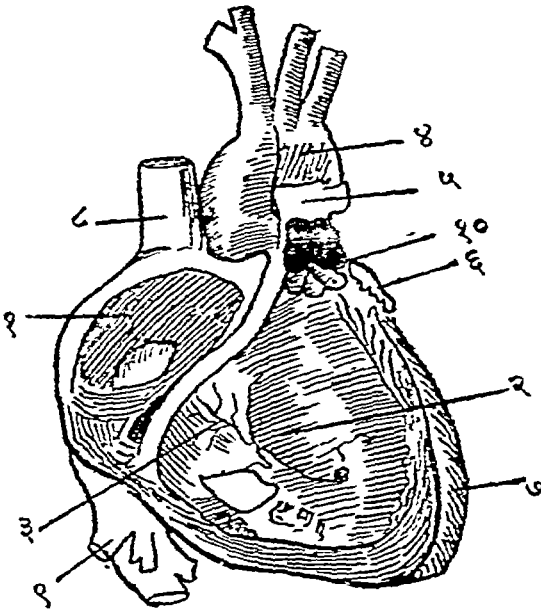
१—ग्राहक कोष्ठ।

२—क्षेपक कोष्ठ।

३—क्षुद्र छिद्रों के कपाट और (सूत्र)।

४—महा धमनी।

५—फुस्फुसीय धमनी।

६—बाएँ ग्राहक कोष्ठ का खण्ड।

७—बाएँ ग्राहक कोष्ठ का अंश।

८—ऊर्ध्व महाशिरा।

९—अधोगा महाशिरा।

१०—क्षेपक कोष्ठ वा फुस्फुसीय धमनी का मध्यवर्ती मार्ग।

यदि हृदय को बीचों बीच से दो खण्डों में काट दिया जाए, तो हृदय के दो भाग हो जाते हैं एक दाहिना भाग एक बायाँ भाग। इन दोनों भागों के मध्य में एक पर्दे की झिल्ली होती है, जो इन भागों को एक दूसरे से पृथक् करती है। यदि इन भागों को देखा जाए तो ज्ञात होगा कि, प्रत्येक भाग में ऊपर वा नीचे दो दो खाने बने हैं। ( ऊपर वाले कोष्ठों को ग्राहक कोष्ठ या अट्रिकल कहते हैं। नीचे के कोष्ठों को क्षेपक कोष्ठ या वेन्ट्रिकल ) और दोनों कोष्ठों के मध्य एक क्षुद्रछिद्र है, जो इन दोनों को एक दूसरे से मिलाये हुए हैं, इन छिद्रों के बीच में कुछ स्नायु कपाट लगे होते हैं, जिनसे यह छिद्र खुलते और बन्द होते हैं। परन्तु कपाटों की बनावट कुछ ऐसी है, कि एक बार रक्त निकल कर फिर इनमें से नहीं आ सकता।

**हृदय की अन्तरंग रचना**

दाहिना ऊपर वाला कोष्ठ बाएँ पार्श्व के उपरिवर्त्ती कोष्ठ की अपेक्षा डील डौल मे बड़ा होता है। उसकी दीवार पतली होती है। यही दशा दाहिनी ओर के नीचे वाले कोष्ठ की दीवारों की है, नीचे के दाहिने और बाएँ दोनों भाग डील डौल में समान होते हैं।

हृदय की दाहिनी ओर के दोनों कोष्ठों में दूषित रक्त दौड़ता है जिसका रंग शरीर के भीतर के आँगारिकाम्ल के कारण श्याम वर्ण का होता है। यही रक्त जब इन कोष्ठों से चलकर

फेफड़ों में पहुँचता है, तो श्वास की ओषजन वायु से मिलकर शुद्ध होता है, और फेफड़े में से फिर कर बाईं ओर के कोष्टों में लौट आता है, अब इसका रंग लाल होता है, वाएँ कोष्टों से चल कर पुनः वह सारे शरीर में भ्रमण पर चला जाता है।

**शिराएँ व धमनियाँ**

हृदय के चित्र में कुछ नालियाँ नीले रंग की लगी हैं, और कुछ लाल रंग की, यह वह बड़ी बड़ी रगें हैं, जिनमें पवित्र और दूषित दोनों प्रकार के रक्त चलकर शरीर में प्रवाहित होते हैं और शरीर से हृदय में आते हैं। यह रक्त वाहिनिएँ हृदय के कोष्टों में लगी हुई हैं। रक्त के गमनागमन के लिए रगों और हृदय के कोष्टों में भी ऐसे कपाट लगे हैं जैसे कि ग्राहक कोष्ट व क्षेपक कोष्ट के मध्य में लगे होते हैं।

जिन रक्त वाहिनियों से काला रक्त चलता है, वह नीली हैं, और जिन में से लोहित वर्ण का रुधिर चलता है, वह लाल हैं जो रगें रक्त को हृदय से शरीर में ले जाती हैं, उनको "धमनियाँ" कहते हैं। उनका लक्षण यह है कि, हृदय स्फुरण और रक्त के रुक रुक कर दौड़ने के कारण; यह सर्वदा फड़का करती हैं, और जो रक्तवाहिनियाँ रक्त को हृदय में लाती हैं, उनको "शिराएँ" कहते हैं। यह शिराएँ फड़कती नहीं। धमनियों में शुद्ध रक्त बहता है, और शिराओं में अशुद्ध रक्त। हृदय के दाहिने ग्राहक कोष्ठ में दो शिराएँ लगी हैं, जो अशुद्ध रक्तको हृदय में प्रवेश कराती हैं,

इनका नाम "ऊर्ध्व-महाशिरा" और "अधोगा महाशिरा" है। हृदय के दाहिने क्षेपक कोष्ठ से रक्त को ले जाने वाली रग को "फुस्फुसीया धमनी" या "पलमोनरी आर्टरी" कहते हैं। यह शिरा हृदय से निकल कर दो शाखाओं में विभक्त हो जाती है। और एक एक शाखा फुस्फुसहृय में चली जाती है। हृदय के बाएँ ग्राहक कोष्ठ से चार शिराएँ लगी हैं। इस लिए फेफड़े से दो दो शिराएँ स्वच्छ रक्त लाती हैं। उनको, "फुस्फुसीय-शिराएँ" या "पलमोनरी वेन्स' कहते हैं। बाएँ क्षेपक कोष्ठ में से एक धमनी निकली है, उसे "महा धमनी" वा "अयोआर्टा" कहते हैं। यह धमनी सम्पूर्ण शरीर में शुद्ध रक्त पहुँचाती है।

हृदय की स्पन्दन

छाती की बाईं ओर हाथ रख कर देखो, ज्ञात होगा कि भीतर धक धक हो रही है। कान रख कर सुनो, ध्वनि स्पष्ट हो जाएगी। यह दशा हृदय के हिलने डुलने से प्रकट होती है। हृदय के दोनों ग्राहक कोष्ठ एक साथ फैलते हैं। और दोनों क्षेपक कोष्ठ एक साथ सिकुड़ते हैं।

ग्राहक कोष्ठों और क्षेपक कोष्ठों के इस प्रकार प्रसार वा संकोचन से रक्त हृदय के कोष्ठों में प्रवेश करता है और बाहर निकल जाता है। इसी कारण हृदय निरन्तर धड़कता रहता है। धमनियाँ हृदय में बंधी हैं, इस लिए हृदय के सिकुड़ने और फैलने के हेतु, यह रगें नहीं तनतीं किन्तु ढीली रहती हैं, इन धमनिया

में भी धमक उत्पन्न होती है। इन को "नाड़ी की चाल" कहते हैं, जो हृदय की चाल के साथ हुआ करती हैं।

हृदय की धमक या गति में तीव्रता तेजी या मन्दता, सामान्य तः मनुष्य की आयु पर निर्भर है। एक वर्ष के बालक का हृदय बहुत तेज चलता है। उसकी गति लगभग १२० धक्के प्रति मिनट के भाव से होती है। परन्तु ज्यों ज्यों अवस्था ढलती है, हृदय की चाल घटती जाती है, यौवन काल की अवस्था मे ७० से लेकर ८० धक्के तक प्रति मिनट तक हो जाती है। और वृद्धावस्था में ६० से ७० तक ही रह जाते हैं।

दौड़ने से हृदय बड़े वेग से धड़कने लगता है

तुम पढ़ चुके हो कि हृदय की धड़कन वस्तुतः, हृदय के ग्राहक कोष्ठों व क्षेपक कोष्ठों के खुलने व मुंदने पर होती है, जो रक्त के आने और निकलने पर निर्भर है। दौड़ने में केवल हृदय ही को गति तीव्र नहीं हो जाती, वरञ्च, श्वास भी तीव्र गति से चलता है। इसका कारण यह है, कि, दौड़ने से अगों के कामों में अधिकता हो जाती है।

देह की यन्त्र-प्रणाली की चाल बढ़ जाती है, भाप अधिकाधिक बनने लगते हैं। कार्बन-द्विओपद (कर्बन डि-आग्ज़ोड) की मात्रा रुधिर में अधिक हो जाती है, और आवश्यकता पड़ती है, इस बात की कि रक्त शीघ्रातिशीघ्र स्वच्छ हो। अतः, रक्त की दौड़ में तेज़ी हो जाती है। रक्त की चरित्र गति के कारण

हृदय के कपाट भी शीघ्र शीघ्र खुलने और बन्द होने लगते हैं, इसी लिए हृदय की गति तीव्र हो जाती है।

श्वास के वेग का कारण यह है, कि फेफड़े कार्बन द्विओषद के विषमले रक्त को, जिसकी इन में पर्य्याप्त मात्रा शीघ्र शीघ्र पहुँचने लगती है, वेग से स्वच्छ करने लगते हैं। इसके अतिरिक्त देह में उष्णता और वेग उत्पन्न करने के लिए अधिक ओषजन की आवश्यकता पड़ जाती है। अतः फेफड़े भी शीघ्र शीघ्र खुलने और बन्द होने लगते हैं।

## अभ्यास

(१) हृदय की आकृति, उसकी बनावट का वर्णन करो, और बताओ कि, हृदय वक्ष-स्थल (छाती) के किस ओर स्थित है?

(२) मनुष्य का हृदय परिमाण (डीलडौल) में कितना होता है? और उसका गुरुत्व (वज़न) कितना हुआ करता है?

(३) हृदयच्छद क्या वस्तु है, और तुम उसके विषय में क्या जानते हो?

(४) हृदय की आन्तरिक रचना कैसी है और इसमें क्या विशेष विशेष बातें हैं?

(५) हृदय के दाहिने ग्राहक कोष्ठ व क्षेपक कोष्ठों की बाएँ ग्राहक कोष्ठ व क्षेपक कोष्ठ से तुलना करो।

(६) धमनी व शिरा में क्या अन्तर है? और उसका क्या कारण है?

(७) हृदय में जो रगें लगी हुई हैं, उनके नाम बताओ, कि उनका लगाव हृदय के किस भाग से है और वह क्या काम करता है?

(८) हृदय के हिलने डोलने का क्या कारण है?

( ९ ) नाड़ी की चाल का क्या हेतु है ?

(१०) हृदय की गति पर मनुष्य की आयु का क्या प्रभाव पड़ता है, और क्यों ?

(११) दौड़ने में हृदय की गति क्यों तीव्र हो जाती है ?

(१२) दौड़ते समय साँस क्यों वेगवान् हो जाती है, और हृदय क्यों बड़ी तेज़ी से धड़कने लगता है ?

---

# २. (ख)—फेफड़े

फेफड़ों की बनावट मधुमक्खी के छत्ते जैसी होती है। यह बहुत से छिद्रों से मिलकर बना है। फेफड़ों के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म छिद्र महीन झिल्ली की दीवारों से बने होते हैं। जब इनमें वायु भर जाती है, यह फूल जाते हैं, और जब वायु निकल जाती है, सिकुड़ जाते हैं।

फेफड़ों की बनावट

संगतरे की फाँक लो और ऊपर की झिल्ली हटा करके देखो पता चलेगा कि इसमें अनेक नन्हीं-नन्हीं सिकुड़ने पर्त्त-पर्त्त से जमी हुई हैं। इनकी झिल्लियाँ अधिक महीन और मृदु होती हैं। उनमें रस भरा होता है। निपट यही दशा फेफड़ों की है। यदि एक फेफड़े की जाँच की जाए, तो उस की बनावट में कोष्ठकमय (खानेदार) झिल्ली लचकीले रेशे और वायु की थैलियाँ मिलेंगी, जिनका व्यास १/१०० इंच होता है। इन थैलियों या कोषों के परस्पर मिलने से फेफड़ा बनता है।

अब थैलियों की विशेषताओं पर ध्यान दो। तुम जानते हो कि जो वायु बाहर से भीतर आती है, वह पहले-पहल नासा-छिद्रों अथवा मुँह के द्वारा टेंटुए में प्रवेश करती है। वहाँ से वायु-प्रणाली मिलती है, जो थोड़ी दूर चलकर दो शाखाओं में विभक्त हो जाती है, एक शाखा एक फेफड़े को चली जाती है, और दूसरी दूसरे को।

फेफड़ों में पहुँचकर यह नालियाँ शाखा प्रशाखाओं में बटने लगती हैं, यहाँ तक कि इन महीन-महीन नालियों का एक जाल-सा बन जाता है। यह रोम-रूपक नालिकाएँ या "केशिकाएँ" फेफड़ों के रोम-कूपों या छिद्राणुओं में जाकर गुथ जाती हैं।
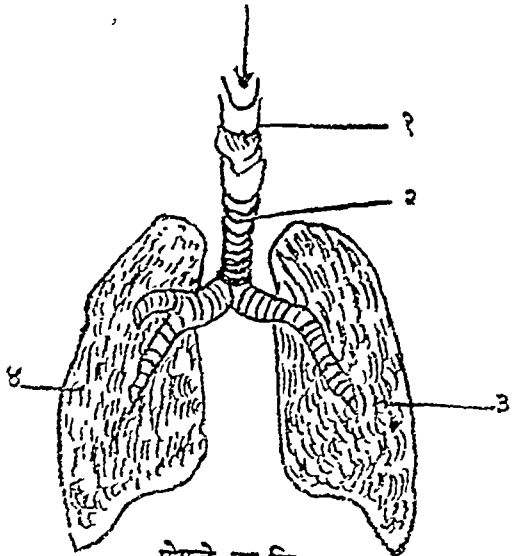
फेफड़े का चित्र

दूसरी विशेषता इनमें यह है कि, हृदय की शिराएँ और धमनियाँ जो फेफड़ों में आती हैं वह पृथक् ही अपना जाल बनाती हैं, जो शाखा प्रशाखा होते होते फेफड़े के सम्पूर्ण छिद्राणुओं में फैल जाती हैं। और वायु की नलिकाओं की भाँति यह शिराएँ भी फेफड़े के रोम-कूपों में जाकर समाप्त होती हैं।

**फेफड़ों का रूप और आकार**

फेफड़े दो होते हैं। वायु की नलिका की दोनों शाखाओं मे एक एक फेफड़ा लगा हुआ है, हृदय का स्थान इन दोनों के मध्य में होता है। फेफड़े शुण्डाकार और कोमल अंग हैं। इनका पतला सिरा ऊपर की ओर पहिली पसुली से कुछ निकलता हुआ रहता है, और चौड़ा सिरा नीचे की ओर पसुलियों के नीचे तक चला जाता है, फेफड़े ऊपर की ओर उभरे हुए और भीतर की ओर गहरे होते हैं। आगे व पीछे दोनों ओर के भाग पतले होते हैं। दाहिने फेफड़े में तीन लोथड़े होते हैं और बाएँ फेफड़े में दो लोथड़े। दाहिना फेफड़ा चौड़ाई में बाएँ फेफड़े से कुछ बड़ा होता है। उसका भारीपन तौल में ११ छटाँक के लगभग होता है, बायाँ फेफड़ा दाहिने वाले से १ छटाँक तौल में कम होता है, परन्तु लम्बाई में लग भग १ इंच बड़ा होता है।

फेफड़े अपने आकार-विस्तार के विचार से बहुत हलके

होते हैं। स्त्रियों का फेफड़ा पुरुषों की अपेक्षा हलका होता है। इनका रंग बाल्यावथा में गुलाबी होता है, युवावस्था में श्यामल मिश्रित लाल और बुढ़ापे में काला हो जाता है।

हृदय की भाँति फुस्फुसों पर भी दो पर्त्त की झिल्ली चढ़ी होती है। दोनों स्तर ( तहों ) के बीच के बीच में द्रव-रस भरा रहता है, जो इन पर्त्तों को मृदु और मोदुर रखता है। ऊपर की झिल्ली वक्ष की भीतरी दीवारों पर चिमटी रहती है, और दूसरी झिल्ली फेफड़ो पर रहती है। इस प्रकार वह वायु जो फेफड़े में जाती है, शरीर के भीतर और किसी ओर निकलने नहीं पाती और फेफड़े तने और फूले रहते हैं। परन्तु यदि इस झिल्ली में छेद कर दिया जाय तो बाहर की वायु के कारण फूले हुए फेफड़े बहुत कुछ सिकुड़ जाएँगे और साँस कठिनता से जा सकेगा। यदि यह छेद बड़ा हो अथवा यदि दोनो ओर हो जाएँ तो साँस रुक जाएगा।

हमारे जीवन के लिए फेफड़े आवश्यक हैं। फेफड़े दो कार्य करते हैं। एक साँस लेना, दूसरे दूषित रक्त को शुद्ध करना। तुम पढ़ चुके हो कि हृदय से जो शिराएँ धमनियाँ आती हैं वह शाखा प्रशाखा होकर फेफड़ों के सारे छिद्राणुओं में फैल जाती हैं। इसी प्रकार टेंटुए से नीचे उतर कर वायु की नलिका भी दो शाखा में विभाजित हो जाती है और एक एक शाखा दोनों

फेफड़ों की आवश्यकता

फेफड़ों में जाकर पुनः शाखा प्रशाखाओं में हो जाती है, और फेफड़े के छिद्राणुओं में फूटती है। फेफड़ों के प्रत्येक कोष्ठ में एक ओर रक्त की नलिकाएँ पहुँचती हैं दूसरी ओर वायु की। अतः जब कार्बन द्विओषद (कार्बन डि-आक्सीड) का दूषित रक्त "फुस्फुसीय धमनी" के द्वारा फेफड़ों में प्रवेश करता है, तो फेफड़ों के सब छिद्र उस रक्त से परिपूर्ण हो जाते हैं। फेफड़े खुलते हैं और शुद्ध वायु श्वास के द्वारा फेफड़ों में प्रवेश करके इनके सूक्ष्म छिद्रों में पहुँच जाती है, इस प्रकार उसके स्वच्छीकरण का प्रबन्ध होता है। वायु की ओषजन इस दूषित रक्त में जो छिद्राणुओं में भरी रहती है, मिल जाती है और रक्त की कार्बन द्विओषद् निकल करके वायु में आ जाती है। यह काम निमेष मात्र में समाप्त हो जाता है और फेफड़े बन्द हो जाते हैं। इस प्रकार एक ओर छिद्राणुओं की विषैली वायु श्वास के द्वारा वायु की नलिका से बाहर निकल जाती है। दूसरी ओर स्वच्छ रक्त फुस्फुसीय धमनी के द्वारा हृदय के बाएँ ग्राहक कोष्ठ में लौट आता है। यहाँ से महाधमनी उसको सारे शरीर में पहुँचा देती है। इस प्रकार फेफड़ों के खुलने व बन्द होने से दो महत्व के कार्य सम्पादित होते हैं।

## अभ्यास

(१) फेफड़ों की बनावट कैसी है, और उसका क्या कारण है ?

(२) फेफड़ों के कोषों (थैलियों) की बनावट में क्या विशेष बात पाई जाती है ?

(३) फेफड़ों का रूप व आकार कैसा है ?

(४) दाहिने व बाएँ फेफड़ों में क्या अन्तर होता है, और इसका क्या कारण है ?

(५) अवस्था (आयु) और लिंग (नर-नारी भेद) का प्रभाव फेफड़े पर क्या पड़ता है ?

(६) शिराओं और धमनियों का फेफड़ों से क्या सम्बन्ध है, और इस से लाभ क्या है ?

(७) वायु की नलिका का फेफड़ों से कोई सम्बन्ध है या नहीं, और यदि है तो कितने प्रकार ?

(८) फेफड़ों का स्थान हमारे शरीर में किस खंड में है, और किस प्रकार ?

(९) फुस्फुसावरण का वर्णन करो, और इसका लाभ बखान करो।

(१०) फेफड़ों को प्रकृति ने किस लिए बनाया है ?

(११) फेफड़े हमारे शरीर में क्या क्या काम करते हैं ?

(१२) फेफड़े रक्त को किस प्रकार शुद्ध करते हैं ?

---

# ३. (ग)—वृक्क (गुर्दा)

कटा हुआ वृक्क ।
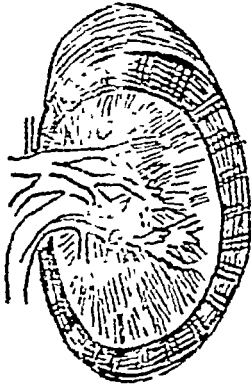
वृक्कद्वय (गुरदे)

(चित्र का वर्णन)
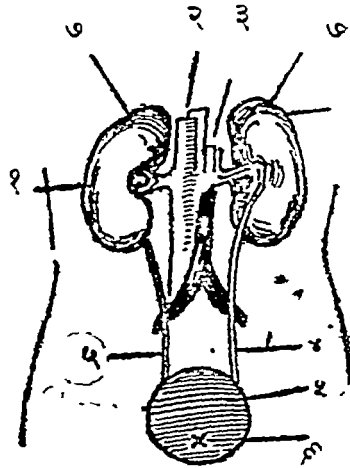
१—वृक्क (दोनों) ।
२—अधोगा महाशिरा ।
३—महाधमनी ।
४—मूत्राशय ।
५—मूत्र की नलिकायें (मूत्रप्रणाली)
६—मूत्र का मार्ग ।
७—गुर्दे की टोपी (उप वृक्क) ।

**वृक्क की रचना**—वृक्क दो होते हैं, एक दाहिना दूसरा बायाँ । गुरदों का रूप सेम के बीज की भाँति होता है, और रंग श्यामाभ पिंगल या काला छुए हुए गुलाबी होता है । अग्र-भाग

से उभरे और पश्चाद् भाग से नतोदर (चिपटे) गुरदों पर एक सौत्रिक (रेशेदार) झिल्ली का आवरण चढ़ा होता है, जैसा कि तुम फेफड़ों के विषय में पढ़ चुके हो। गुर्दों के भीतरी चिपटे पार्श्व में पोल होता है, जिसके भीतर धमनियाँ व शिराएँ पड़ी रहती हैं, जो रक्त को वृक्कों के भीतर लाती हैं और ले जाती हैं।

वृक्क अनेक सूक्ष्म सूक्ष्म नालियों और कोषों के परस्पर मिल जाने से बने हैं। युवा मनुष्य के वृक्क लगभग ४ इंच लम्बे, २ इंच चौड़े, और १० से १५ तोला तक गरुव होते हैं। स्त्रियों के वृक्क दो ढाई तोले के निकट तक तोल में हलके होते हैं। यदि हम वृक्क को काट कर देखें, तो मध्य भाग में शिखाओं व मीनारों जैसे उभार दिखाई पड़ेंगे। इन मीनारों में महाधमनी की धमनियाँ और अधोगा महाशिरा की शिराएँ शाखा प्रशाखाओं में फूट कर घुसी हुई हैं, जिनके भीतर फैल जाने से उनका जाल सा बन गया है। महाधमनी के द्वारा जो स्वच्छ रुधिर वृक्कों में आता है, वह वृक्क-द्वय के यन्त्र को आहार और शक्ति पहुँचाता है और अधोभाग महाशिरा के द्वारा जो दूषित रक्त शरीर के वस्ति-विभाग या नीचे वाले खंड से आता है, वह शुद्ध होकर मूत्र बनता है।

उपवृक्क

गुरदों के ऊपर पीतवर्ण की एक ग्रन्थि होती है, जिसे गुर्दों की टोपी कहते हैं। इस उपवृक्क की लम्बाई लगभग डेढ़ दो इंच, चौड़ाई एक

इंच और मोटाई लगभग चौथाई इंच के होती है। तोल में ढाई तीन तोले से लेकर एक छटाँक तक होती है। दाहिने उपवृक्क का आकार त्रिकोण होता है और बाएँ का अर्द्धचन्द्र। इन से विशेष प्रकार का रस निकला करता है, जो रक्त में मिल कर स्नायुओं को आहार पहुँचाता है, उन्हें उपयोगी और बलवान बनाए रखता है। यह बात बिना इन टोपियों के कदापि सम्भव नहीं।

**वृक्क व संस्थान**

मनुष्य के शरीर में वृक्क ग्यारहवीं पसुली के नीचे के मध्यस्थ कटि भाग में होते हैं दाहिने वृक्क बाएँ वृक्क से लेश मात्र नीचे स्थित हैं। वृक्क रक्त की नलिकाओं के दोनों ओर खड़े खड़े लगे हुए हैं। इनका चिपटा खंड रीढ़ की अस्थि की ओर होता है। और गोल उन्नत भाग पसुलियों की ओर।

**मूत्राशय और मूत्र-प्रणाली**

जिस स्थान पर रक्त-वाहिनियाँ वृक्कों में प्रवेश करती हैं, उसी के नीचे से एक एक नाली वृक्कों से निकलती है, यह "मूत्र प्रणाली" या मूत्र की नलिका कहलाती है। उसका व्यास लगभग $\frac{1}{8}$ इंच होता है। यह नाली वृक्क से निकल कर मूत्राशय मे जाती है।

**मूत्र**

मूत्र, वस्तुतः, तव्यंजन (नैट्रोजन) की एक तरल मिश्रित खूदी है जो रक्त स्वच्छीकरण के पश्चात् एकत्र होती है। इसमें अनेक नमकीन द्रव्य होते हैं। पेशाब वृक्कों में संग्रह होता है। वृक्कों के "शाखाओं" या

मीनारों में अधोगा महाशिरा का रक्त जब प्रवेश करता है, तो उन कोषों की दीवारें रक्त के कुछ क्षारीय-द्रव्य व जल को शोषण कर लेती हैं, और रक्त को स्वच्छ करके निकाल देती हैं। शोषित पदार्थों को मूत्र की दोनों नलिकाओं में प्रेरित कर देती हैं। इस प्रकार मूत्र बूंद बूंद करके मूत्राशय में इकट्ठा हुआ करता है। जब मूत्राशय परिपूर्ण हो जाता है, तो हम को "लघुशंका" (मूत्र त्यागने की इच्छा) होती है।

वृक्क मूत्र की सृष्टि करने के लिए एक विशेष अंग है। इनका

**वृक्कों की प्रक्रिया**

कर्त्तव्य है कि जिस समय रक्त, समस्त शरीर का भ्रमण करता हुआ अधोग महाशीरा के द्वारा, इनमें प्रवेश करे तब क्षारीय अशों को छान ले।

जब वृक्क रक्त का लवण मिश्रित अंशों से स्वच्छ कर चुकते हैं, तो उसे हृदय की ओर अधोगा महाशिरा के द्वारा लौटाल देते हैं, और खूदी को मूत्र के रूप में मूत्र-प्रणालियों में गिरा देते हैं। इस प्रकार शरीर दूषित रक्त शरीर के अधोभाग से पार होता हुआ, इनने विना किसी रुकावट के पहुँचता है, और स्वच्छ हो हो कर खूदी मूत्र स्वरूप बूद बूंद करके मूत्राशय मे एकत्र हुआ करतो है॥

## अभ्यास

(१) वृक्कद्वय की बनावट का वर्णन करो।

(२) वृक्कद्वय की आन्तरिक रचना कैसी है?

(३) वृक्कों में कौन कौन सी धमनियाँ और शिराएँ हैं और जो रक्त इनके द्वारा वृक्कों में आता है, क्या काम करता है ?

(४) वृक्कों में कहाँ कहाँ से रक्त आता है, और कहाँ कहाँ जाता है ?

(५) "उपवृक्क" का वर्णन करो ।

(६) वृक्क शरीर में किस स्थान पर और किस ढंग से स्थित हैं ?

(७) मूत्राशय और मूत्र की नलिकाओं का वर्णन करो ।

(८) मूत्राशय क्या वस्तु है और किस प्रकार बनता है ?

(९) वृक्कों का क्या कर्त्तव्य है ?

(१०) पुरुषों और स्त्रियों के वृक्क में क्या अन्तर है ?

---

# ४. (घ)—प्लीहा या तिल्ली
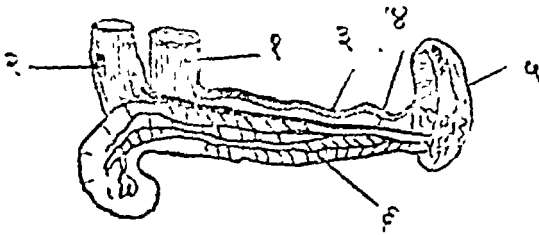
(चित्र का वर्णन)

| | |
|---|---|
| १—महाधमनी । | ४—अधोगा महाशिरा की शाखा । |
| २—अधोगा महाशिरा । | ५—प्लीहा । |
| ३—महाधमनी की शाखा । | ६—क्लोम (पाचक धरा) या अग्न्याशय । |

सीहा नीलिमा मय गुलाबी रंग का एक लम्बाकार अंग है जो एक लुआबदार झिल्ली के भीतर उदर में बाएँ पार्श्व में नीचे बामी पसुलियों के नीचे स्थित है। तिल्ली का आकार वृक्कों के सदृश होता है। एक युवा मनुष्य की तिल्ली, साधारणतः ५ इंच लम्बी, ३ से ४ इंच तक चौड़ी और लगभग १½ इंच मोटी और २½ या ३ छटाँक तोल में होती है। तिल्ली की आकृति घटती बढ़ती रहती है। स्वास्थ्य की दशा मे तिल्ली नहीं जान पड़ती, परन्तु मलेरिया अथवा अन्य रोग में बढ़ जाने पर प्रतीत होने लगती है। बढ़ी हुई तिल्ली बहुधा, नाभि, और पेंड़ू तक चली जाती है।

**प्लीहा की बनावट और स्थिति**

तिल्ली का आकार ऊपर की ओर उभरा हुआ और नीचे की ओर खाली होता है। अन्तरगोल खंड में शिराएँ व धमनियाँ लगी हुई हैं, जो रक्त को तिल्ली में लाती हैं और तिल्ली से जिगर को ले जाती हैं।

मनुष्य की देह में अनेकानेक गाँठें हैं परन्तु ३ ग्रन्थियाँ ऐसी हैं जिनमें कोई प्रणाली या नलिका नहीं होती। यह ग्रन्थियाँ (गाँठें) एक विशेष प्रकार का द्रव्य-रस उत्पन्न किया करती हैं जो शरीर की प्रधान आवश्यकताओं की पूर्ति किया करती हैं। इन प्रणाली-विहीन ग्रन्थियों में एक सीहा की ग्रन्थि भी है।

तिल्ली की बनावट सुकुमार है। वह अरोग्य दशा में भी निरन्तर घटती बढ़ती रहती है। जब हम भोजन कर चुकते हैं

और पाकस्थली में आहार पचाने की क्रिया आरम्भ होजाती है, तो तिल्ली भी क्षण क्षण पर फैलने व सिकुड़ने लगती है, यह इस दशा में चार घण्टे रहती है, निदान जब आहार पच जाता है, तब तिल्ली पहली दशा में स्थिर हो जाती है।

प्लीहा की आन्तरिक दशा

यदि तिल्ली को चीरा जाय तो इसमें एक पतला पतला गूदे-दार पदार्थ भरा निकलेगा और शिराओं तथा धमनियों का फैला हुआ जाल दीख पड़ेगा। वह पदार्थ रक्त के लाल और श्वेत कणों से बनता है, शरीर के रक्त में श्वेत और लाल कण अधिकाँश पाए जाते हैं। यह सब तिल्ली में एकत्रित होते हैं। यहाँ तक कि बढ़ते बढ़ते एक अगाढ़ गूदे का रूप हो जाता है। तिल्ली के कुछ स्थानों पर श्वेत दाने इतने अधिक बढ़ जाते हैं कि श्वेत चित्ते से दीख पड़ते हैं।

तिल्ली का विशेष सम्बन्ध पाकस्थली और रुधिर से है।

तिल्ली से लाभ

यदि तिल्ली निकाल ली जाय तब भी मनुष्य जीवित रह सकता है। हाँ रक्त में लाल और श्वेत कणों की कमी हो जायगी।

तिल्ली के विशेष लाभ निम्नाङ्कित हैं—

१—रक्त के श्वेत व लाल कण तिल्ली में बनते हैं।

२—रक्त के जो लाल कण बेकाम हो जाते हैं, उनको तिल्ली नष्ट कर देती है।

३—तिल्ली रक्त से एक प्रकार का क्षरणीय द्रव्य जिसे यूरिकअम्ल कहते हैं, निकालने में सहायता देती है।

४—तिल्ली एक प्रकार का द्रव्य-रस उत्पन्न करती है जो आहार पचाने लिए क्लोम या पाचक धरा की आर्द्रता के उत्पन्न होने मे सहायता देती है ॥

अभ्यास

(१) तिल्ली क्या वस्तु है और उसकी बनावट कैसी होती है ?

(२) तिल्ली का आकार प्रकार कैसा होता है और किन दशाओं में तुम उसे जान सकते हो ?

(३) तिल्ली किन दशाओं में घटती बढ़ती है ?

(४) तिल्ली की भीतरी बनावट की दशा का वर्णन करो ।

(५) तिल्ली के कौन कौन विशेष लाभ हैं ?

—∞∞—
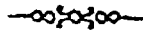
# ५. (च)—यकृत् (जिगर)

१—पित्ता (पित्ताशय)

२—यकृत का दाहिना भाग ।

३—यकृत द्वार की शिरा ।

४—अधोगा महाशिरा ।

५—यकृत का बायाँ भाग ।

६—याकृति धमनी ।

७— ,, शिरा ।

८—पित्त की संयुक्त प्रणाली ।
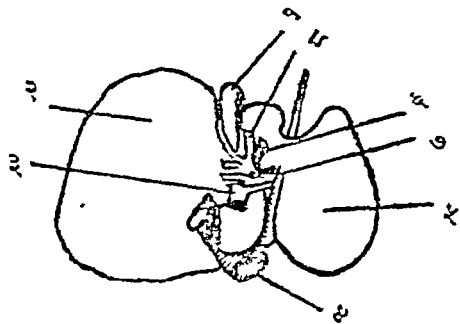
यकृत् भी एक प्रकार की ग्रन्थि है, जिसकी रासायनिक रचना

**यकृत् की बनावट**

झिल्ली और वृक्क से मिलती-जुलती है। फेफड़े की भाँति यकृत् के भी दो भाग हैं। बायाँ भाग छोटा है जो आमाशय के ऊपर रहता है और दाहिना भाग दाहिनी ओर सारे पेट में फैला रहता है। उसके नीचे दाहिना वृक्क और आमाशय का कुछ खण्ड रहता है। यकृत् का आकार प्रकार लगभग एक फुट लम्बा और अर्द्ध फुट चौड़ा होता है। रचना में ऊपर की ओर उभरा हुआ होता है, और भीतर की ओर गहरा होता है। दोनों ओर एक वसामय (लुआवदार) महीन झिल्ली मढ़ी होती है। यकृत् की रचना में विशेष बात यह है कि इसमें ५ खात या गड्ढे, ५ खंड, ५ बन्धन और ५ प्रकार की रक्तवाहिनियाँ होती हैं।

आहार पचाने वाले अंगों में यकृत् भी है। इसमें दो मार्गों

**यकृत् में रक्त का परिभ्रमण**

से रक्त आता है। एक तो यकृत्द्वार-शिरा के द्वारा आमाशय, आँतों, अन्न्याशय और प्लीहा का सम्मिलित रक्त है, जो यकृत् में शुद्ध होता है। यकृत् इस रक्त के कुछ अंशों को शोषण कर लेता है, और कुछ अंशों को जो इसमें विद्यमान रहते हैं और रक्त के लिए बड़े लाभकारी हैं, इसमें मिला देता है। दूसरा स्वच्छ रक्त है जो याकृत्-धमनी द्वारा होकर महाधमनी से यकृत् के पुष्ट करने के लिए आता है। जब दोनों प्रकार का

रक्त यकृत का भ्रमण कर चुकते हैं और यकृत को कुछ त्रुटि शेष नहीं रहती, तो यकृत् वाली शिरा की शाखाओं द्वारा रक्त संग्रहीत होकर, अधोगा महाशिराओं में चला जाता है और वहाँ से हृदय के बाएँ ग्राहक-कोष्ट में पहुँच जाता है।

यकृत् की प्रक्रिया

(१) यकृत पित्तमय द्रव्यों को रक्त से पृथक करके कुछ नालियों या "पित्त स्रोतों" द्वारा एक थैली या कोष में, जिसे "पित्ताशय" या "पित्ता" कहते हैं, बटोर लेता है। जब आमाशय आहार को पचा रहा हो, उस समय पाचन-क्रिया में सहायता देने के लिए पित्त का अंश रक्त के साथ मिलकर याकृत-प्रणाली द्वारा आँतों में पहुँचता रहता है। जब पाचन-क्रिया नहीं होती, उस समय पित्ताशय में एकत्र होता रहता है। जब रक्त से पित्त स्वच्छ न हो जाता हो तो समस्त शरीर पीला पड़ जाता है, जिसे पाण्डुरोग (या काँवर का रोग, कहते हैं।

(२) आहार पच करके पाक-स्थली से आँतों में पहुँचता है। आँतें उसकी शकर को ग्रहण करके यकृतद्वार-शिराओं के द्वारा यकृत में पहुँचा देती हैं। यकृत उसे छोटे-छोटे कणों में, जिसे "याकृत शर्करा" कहते हैं, परिणत करके संग्रह कर लेता है और आवश्यक्तानुसार रक्त में मिला देता है, जिससे शरीर में उष्णता का संचार होता है, और अंग को बल प्राप्त होता है। यदि यकृत इस काम को न करे, तो मूत्र के साथ शकर आने लगती है, और मधुप्रमेह हो जाता है।

(३) रक्त के उन लाल दानों को, जो बेकाम हो जाते हैं; नष्ट कर डालता है।

(४) यकृत् मांसोत्पादक अंशों में से तर्व्यंजन (नैट्रोजन) का एक मिश्रण, जिसे "यूरिया" कहते हैं, निकाल लेता है और उस खूदी को रक्त के साथ मिलाकर वृक्कों में पहुँचा देता है॥

## अभ्यास

(१) यकृत् की बनावट कैसी है और उसका लाभ क्या है ?

(२) यकृत् के कितने खण्ड होते हैं ?

(३) यकृत् की आकृति और आकार-प्रकार कैसा है ?

(४) यकृत् में रक्त कहाँ कहाँ से आता है और क्या होता है ?

(५) रक्त यकृत् में किस प्रकार भ्रमण करता है ?

(६) यकृत के काम और गुण बताओ।

(७) पाण्डु रोग किसे कहते हैं और कैसा होता है ?

(८) मधुप्रमेह क्या वस्तु है और उसके क्या कारण हैं ?

(९) यूरिया से तुम क्या समझते हो, और यूरिया कहाँ बनाई जाती है ?

(१०) पित्त क्या वस्तु है, और उसका क्या गुण है ?

(११) "याकृत् शर्करा" कैसे बनती है, और किस काम आती है ?

(१२) यकृत् की नालियाँ बताओ और वर्णन करो कि यकृत् की रचना में विशेष बात क्या है ?

# ६. (छ)—पाकस्थली (या आमाशय)

(चित्र का वर्णन)

१—मुँह ।
२—नासिका द्वारा वायु मार्ग ।
३—टेंटुवा का मार्ग ।
४—आहार-प्रणाली
५—आमाशय ।
६—यकृत ।
७—क्लोम और पित्ताशय का मार्ग आंतों में ।
८—पित्ता० ।
९—पक्वाशय (आँत जो आमाशय से निकलती है ।
१०—बृहद् अन्त्र (बड़ी आँत) ।
११—क्षुद्रान्त्र (छोटी आँतें)
१२—मलमार्ग सुख (मल द्वार) ।
१३—क्लोम या अग्न्याशय ।
१४—प्लीहा ।
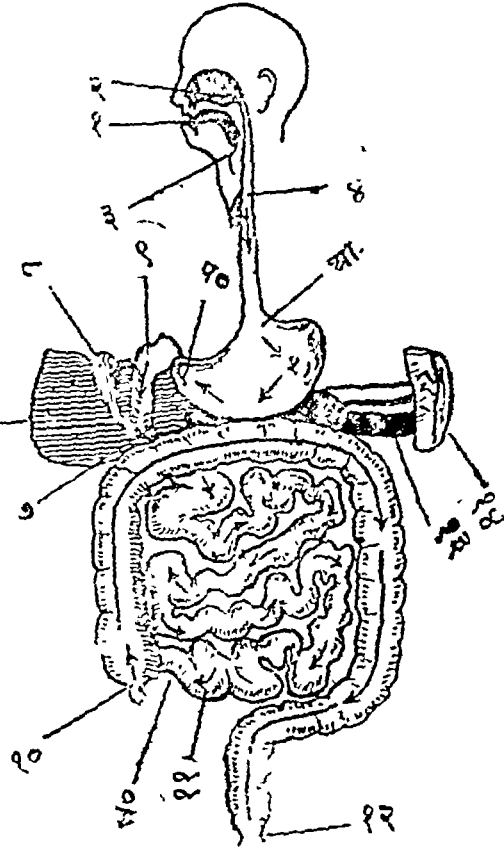
आ० = आमाशय सुख ।  प० = पक्वाशय का द्वार ।

सं० = संधि अर्थात् छोटी आंत से बड़ी आंत का मार्ग ।

नोट—आमाशय और आंतों में आहार की चाल का ढंग वाण दिखाया गया है ।

१—आहार प्रणाली ।

२—आमाशय का मुख ।

३—आमाशय ।

४—पक्काशय-मुख या पक्काशयिक द्वार ।
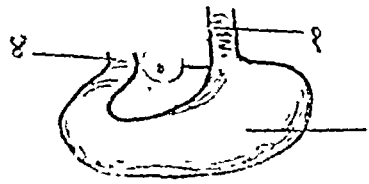
**आमाशय का आकार**

आमाशय या "पाकस्थली" एक थैली है जिसमें आहार पचता है। आमाशय की आकृति मशक जैसी होती है। इसका एक मुख आहार प्रणाली में खुलता है और दूसरा आँतों में। आमाशय का प्रशस्त भाग तिल्ली की ओर होता है और तिल्ली के कुछ अंश को छिपाए रहता है, पतला भाग यकृत के नीचे वाले तल की सीध में होता है। आमाशय की लम्बाई १२ इंच से १५ इंच तक होती है, और खाली आमाशय तौल में लगभग ११ या १२ तोला होता है।

**आमाशय की बनावट**

आमाशय झिल्लियों की चार पर्त्तों से बनता है। सबसे ऊपर एक श्लेष्मामय (लुआबदार) झिल्ली होती है, दूसरी पर्त्त कोष्ठमय रचना की होती है जिसमें सूक्ष्म सूक्ष्म ग्रन्थि पूर्ण सौत्रिक तन्तुएँ या बारीक नालीदार गिल्टियाँ होती हैं। आन्तरिक और अन्तिम पर्त्त भी एक श्लैष्मिक झिल्ली के होती हैं जो बड़ी मृदु और चिकनी

होती है। इसमें यह गुण है, कि छूछे पेट में यह संकुचित हो जाती है, और पेट भरने पर फैल जाती है।

आँतें दो प्रकार की होती हैं छोटी और बड़ी। छोटी का सिरा

आँत

आमाशय से मिला होता है, और बड़ी का क्षुद्रान्त्र से। आँतों की रचना वैसी ही होती है जैसी आमाशय की अर्थात ४ पर्त्तों की झिल्ली की भीतर की पर्त्त में ऐसी रक्तवाहनियाँ और ग्रन्थियाँ होती हैं, जो पचे हुए आहार का रस और उसकी चिकनाई शोषण करके रक्त में पहुँचाती हैं। बड़ी और छोटी आँतों के मध्य एक कपाट सा लगा होता है, जिससे आहार छोटी आँत से एक बार निकल फिर उसमें नहीं लौटता। आँतें कच्छप (केंचुए) की भाँति अविच्छिन्न रूप से सिकुड़ा फैला करती हैं, जिससे इनमें आहार तीव्र गति से पचा करता है और मल बाहर चला जाता है।

दाँतों से कुचला हुआ आहार जब आहार प्रणाली के द्वारा

आमाशय का काम

आमाशय में पहुँचता है, तब पाचन क्रिया की दूसरी गति आरम्भ होती है। आहार के पहुँचते ही आमाशय अपना काम आरम्भ कर देता है, अर्थात सिकुड़ने व फैलने लगता है। आहार को इधर उधर मथने लगता है। इस प्रकार आहार के मिश्रण अंश पृथक् पृथक् होकर पचने लगते हैं। इस प्रक्रिया के साथ साथ आमाशय

की गिल्टियों से एक प्रकार की द्रव वस्तु निकलने लगती हैं। जो आहार में मिल मिल कर उसे पतला कर देती है, आहार के इस तरल रूप को "आहार रस" कहते हैं। आहार रस या पक्व रस का रूप कुछ कुछ श्वेत प्रगाढ़ लसदार, चिपचिपा होता है। जिसमें अम्लगन्ध (खट्टी बू) आती है। आहार रस का कुछ अंश शोषक स्नायुओं द्वारा यकृत में चला जाता है, और शेष आँतों को चला जाता है। पाकस्थली में पचने की अवधि आहार के प्रकार पर अवलम्बित है एक घंटे से लेकर पांच घंटे पर्य्यन्त पाकस्थली आहार को पूर्ण रूप से पचा डालती है॥

## अभ्यास

(१) आमाशय या पाकस्थली की आकृति और रचना किस प्रकार की है, और शरीर के किस खंड में इसका स्थान है?
(२) आन्तों का विस्तीर्ण वर्णन करो।
(३) आमाशय और आन्तों की बनावट की तुलना करो।
(४) आन्तों में आहार कैसे पचता है?
(५) आमाशय का क्या काम है?
(६) आहार कितने समय में पचता है?
(७) पाकस्थली में आहार कैसे पचता है?
(८) पक्वरस या आहार रस क्या वस्तु है?
(९) आमाशय में पच जाने के पश्चात् आहार फिर कहाँ जाता है?

# ७. (ज)--मूत्राशय (वस्ति)

वृक्क के चित्र में वृक्कद्वय से मूत्र-प्रणालियाँ निकल कर एक गोलाकार अंग में लगी हैं, इसी अंग को "मूत्राशय" कहते हैं। मूत्राशय एक थैली है। यह पेड़ू में लगी रहती है, मूत्र विन्दु दोनों वृक्कों से आ आ कर इसमें एकत्र होते रहते हैं। मूत्राशय मूत्र की न्यूनता या अधिकता के अनुसार घटता बढ़ता रहता है। खाली मूत्राशय सिकुड़ कर त्रिकोण आकार का होजाता जब थोड़ा भरा हो, तो गोल होजाता है और अधिक मूत्र भर जाने से डिंब स्वरूप या अण्डाकार होजाता है। परिपूर्ण मूत्राशय ५ इञ्च लम्बा व ३ इञ्च चौड़ा होता है इसमें आध पाव मूत्र समाता है। मूत्राशय को उसके स्थान में स्थित रखने के लिए तन्तुएँ लगी होती हैं जो संख्या में पाँच हैं।

**मूत्राशय की आकृति**

मूत्राशय में ३ छिद्र होते हैं। दो छिद्रों से तो मूत्र वस्ति में आता है और एक मार्ग से निकलता है। इस तीसरे छिद्र के सिरे पर एक पट्ठा लगा होता है, जो साधारणतया सिकुड़ा रहता है, जिससे सदा बाहर नहीं आने पाता। यह पट्ठा केवल उस समय ढीला होता है जब मूत्राशय की थैली भर जाती है और हम मूत्रत्याग करने बैठते हैं। लघुशंका करते समय मूत्राशय की दीवारें भी सिकुड़ने लगती हैं, जिससे मूत्र बाहर निकल जाए॥

**वस्ति-छिद्र**

अभ्यास

१) मूत्राशय की आकृति कैसी है और मूत्राशय अपने स्थान से हट क्यों नहीं जाता ?

२) मूत्राशय में मूत्र किस प्रकार आता है, और कैसे निकलता है ?

३) मूत्र सदा क्यों नहीं टपका करता है ?

४) वस्ति में कितने छिद्र हैं, और उनका क्या काम है ?

---

# पाँचवाँ पाठ

## रक्त-संचार

टिप्पणी—बाणों के चिन्ह से रक्त की चाल की दिशा बताई गई है ।
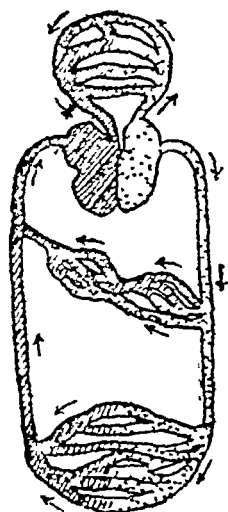
रक्त-संचार का मानचित्र ।
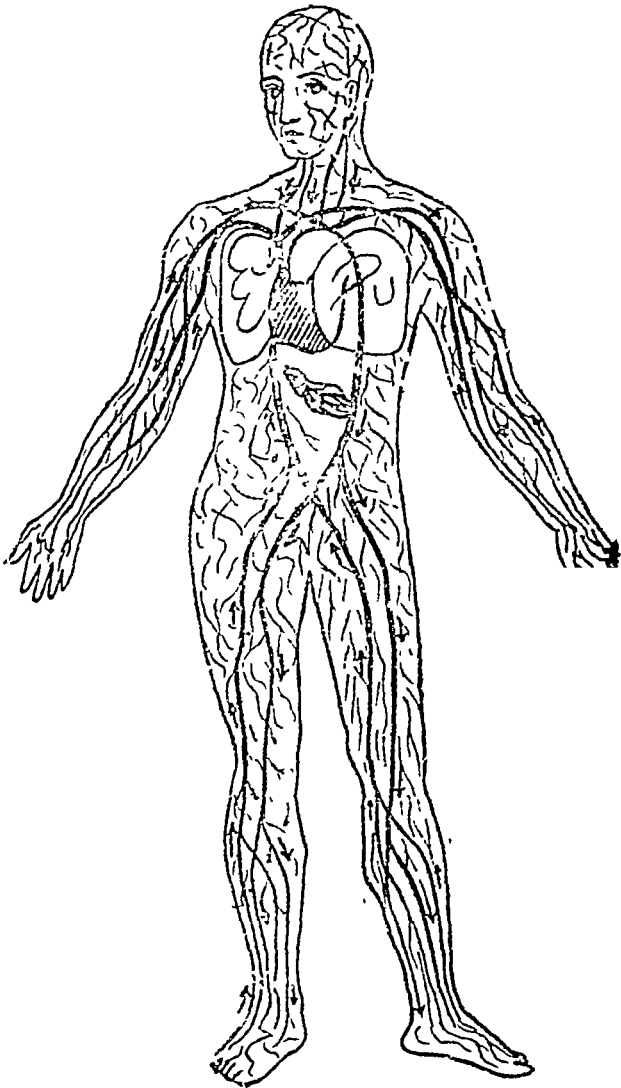
ऊपर के पाठों से तुम को ज्ञात हो गया होगा कि

हमारे जीवन का आधार रक्त है। रक्त ही के द्वारा शरीर के प्रत्येक अवयव को आहार पहुँचता है, रक्त ही के द्वारा आन्तरिक विकार दूर होते हैं। यदि रक्त साफ़ है तो हमारे अंग स्वस्थ रहेंगे। यदि रक्त दूषित है, तो रोग उत्पन्न होंगे। यदि रक्त किसी अंग में न पहुँचे तो वह बेकाम हो जाता है। यदि किसी स्थान पर रुक जाए, तो वह जम जाए, ऐसा स्थान पक जाएगा। और शुद्ध न होने के कारण सड़न पैदा करेगा। यदि सम्पूर्ण शरीराङ्गों में रक्त का संचार स्थगित हो जाए तो शरीर बेकाम हो जाएगा। इसी दशा का नाम मृत्यु है।

**रक्त-संचार का उद्देश्य**

ऊपर के पाठों में तुमने पढ़ा होगा कि तिल्ली व यकृत, रक्त अंशों को पृथक् कर के उसे शुद्ध करते हैं, और उसमे रासायनिक परिवर्त्तन करते हैं, परन्तु रक्त की यथार्थ शुद्धि फेफड़ों में होती है। रक्त के विषमय पदार्थ फेफड़ों ही में आकर निकलते हैं। केवल फेफड़े ही का रक्त अंगों का पालन-पोषण कर सकते हैं।

**रक्त शोधन के विशेष अंग**

जिस प्रकार रक्त-शोधन के केन्द्र फेफड़े हैं, उसी प्रकार रक्त-संचार का केन्द्र हृदय है। बड़े बड़े नगरों में तुमने देखा होगा कि धोने आदि आवश्यक कामों में प्रयोग करने के लिए पानी का प्रबन्ध बम्बो के द्वारा होता है। परन्तु नदी का पानी एक बार ही बम्बों में नहीं पहुँचा

**रक्त-गति**

दिया जाता, किन्तु पहिले उस पानी को स्वच्छ करके किसी
स्थान पर एक बड़े ताल में जिसे "जलाशय" कहते हैं,
भर देते हैं, फिर वहाँ से नगर के सम्पूर्ण स्थानों में जहाँ
जहाँ बम्बे लगे होते हैं, पहुँचा देते हैं, और इस प्रकार सब
मुहल्लों के निवासी निर्मल जल से एक समान लाभ उठाते हैं।
यह तो जल का प्रबन्ध था। परन्तु, मलिन पानी के निकालने
के लिए प्रत्येक घर मे मोरियाँ भी बनी होती हैं जिनके द्वारा यह
पानी बाहर निकल जाता है। यदि ऐसा न किया जाए तो वह
पानी घरों में इकट्ठा होकर सड़े, दुर्गन्धि फैलावे, और सारे शहर
में रोग फैल जावे परन्तु घर का पानी निकालने के लिए यह नहीं
होता कि उन्हीं बम्बों के मार्ग से जिनके द्वारा कि पीने का पानी
आता है, काम में लाया गया पानी भी निकाला जाए, किन्तु इस
जल के निकालने के लिए घर घर में मोरियाँ बनी हैं, जो सड़कों
की नालियों में गिरती हैं। नालियाँ मिल कर किसी गन्दे नाले में
जा गिरती हैं। इस प्रकार नगर भर का सम्पूर्ण जल उस नाले
मे एकत्र होकर पीने के पानी आने के स्थान से दूर उसी नदी में
जिसका पानी बम्बों में आया था, जा गिरता है, नदी में यह
मैला और दूपित जल पुनः परिष्कृत (साफ़) होता है, और
आगे चल कर दूसरे नगरों में बम्बों द्वारा पहुँचता है।

ठीक यही प्रबन्ध रक्त-संचार का है। फेफड़े स्वच्छ रक्त
को फुस्फुसी या धमनी के द्वारा हृदय के
वाएँ ग्राहक कोष्ट में भेजते हैं, यह हृदयांश

शरीर में रक्त-गति

स्वच्छीकृत रक्त का आशय है। यहाँ से बायाँ ग्राहक कोष्ठ उस रक्त को बाएं क्षेपक-कोष्ठ में धक्का देकर निकाल देता है। यह बायाँ क्षेपक-कोष्ठ फैल जाता है, इस रक्त को लेकर फिर सिकुड़ता है, और रक्त को धकेल कर महाधमनी की बड़ी नाली या धमनी में प्रविष्ट कर देता है। महाधमनी की नाली में लाल और शुद्ध रक्त समस्त शरीरांगों में व्याप्त हो जाता है। महाधमनी से दो शाखाएँ ग्रीवा-हृदय से होती हुई मस्तिष्क को जाती हैं, और दो शाखाएँ हाथों को चली जाती हैं। नीचे की ओर हृदय से लेकर पेड़ू तक तो महाधमनी की एक ही नाली रहती है, परन्तु पेड़ू के नीचे पुनः दो शाखाएँ हो जाती हैं और एक एक दोनों टाँगों को चली जाती है शरीर के अंग प्रत्यंग के लिए महाधमनी की इन शाखाओं से पुनः सूक्ष्मातिसूक्ष्म शाखाएँ फूटती हैं, यहाँ तक कि, किसी अंग का कोई भी अंश ऐसा नहीं जहाँ सूक्ष्म सूक्ष्म धमनियाँ न पहुँचती हों, और हृदय के इस स्वच्छ शुद्ध रक्त को अंगों के भरण-पोषणार्थ उनकी उपयोगिता के लिए न पहुँचती हों।

जब रक्त शरीर में व्याप्त हो जाता है, तो अंग महाधमनी के उस रक्त से ओषजन का अंश ग्रहण कर लेते हैं, और आंगारिकाम्ल या कार्बनिक ऐसिड गैस का विकारयुक्त और विषमय अंश जो इनमें उत्पन्न होता है, उसमें मिला देते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि वह लाल रक्त जो महाधमनी

को शाखाओं के द्वारा अंग में आया था, कार्बन के प्रभाव से कुछ कुछ श्यामल हो जाता है, और दूपित रक्त को निकालने की आवश्यकता पड़ जाती है। तुम देखोगे कि शरीर के सभी अवयवों में जहाँ जहाँ लाल नसें दौड़ रही हैं, वहाँ नीली नसों का भी जाल फैला हुआ है। अतएव यह दूपित रक्त महीन महीन शिराओं के द्वारा फिर लौट आता है और परस्पर एक दूसरे से मिलती हुई एक बड़ी शिरा बन जाती है। दोनों टाँगों की दोनों बड़ी शिराओं के सम्मेलन से जो शिरा बनती है, उसे "अधोगा महाशिरा" कहते हैं। दोनों भुजाओं और ग्रीवा की दोनों ओर की शिराओं के मिलने से जो शिरा बनती है उसे "ऊर्ध्व महाशिरा" कहते हैं। अतः सकल शरीर का कार्बन द्विओपद् मिश्रित दूपित रक्त शिराओं के द्वारा उछलता हुआ ऊर्ध्व महाशिरा और अधोगा महाशिरा में पहुँचता है और यह दोनों शिराएँ उसको हृदय के अन्य मार्ग हृदय के दाहिने ग्राहक कोष्ठ में ले जाती है। रक्त के पहुँचने पर ग्राहक कोष्ठ फैलता है और रक्त को भीतर ग्रहण करके दाहिने क्षेपक कोष्ठ में धक्का देकर निकाल देता है। दाहिना क्षेपक कोष्ठ भी यही प्रक्रिया करता है और अब फुस्फुसीया शिरा के द्वारा दोनों फेफड़ों में पहुँच कर उसके छिद्राणुओं में फैल जाता है। यहाँ पर उसे श्वास के द्वारा आने वाली शुद्ध वायु मिलती है, अब फेफड़े बन्द हो जाते हैं, कार्बन द्विओपद् मिले हुए रक्त की स्वच्छीकरण की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। आने वाली शुद्ध वायु की ओपजन का

अंश पृथक् करके इस रक्त में मिला देते हैं और ऑंगारिकाम्ल निकाल कर वायु में मिला देते हैं । इस प्रकार रक्त शुद्ध हो जाता है । वह पुनः लोहित रंग का बलशाली रुधिर हो जाता है । अब फेफड़े प्रस्फुट (खुल) हो जाते हैं और स्वच्छ रक्त को फुस्फुसीय धमनी के द्वारा हृदय के बाएँ ग्राह कोष्ठ में शरीर में परिभ्रमण करने के लिए लौटा देते हैं । कार्बन द्विओपद् वाली वायु को जिसे रक्त में ऑंगारिकाम्ल का अंश विकार पूर्ण बना देता है श्वास के द्वारा बाहर निकाल देते हैं । इस प्रकार रक्त का संचार हर पल हर घड़ी चाहे हम सोते हों अथवा जागते, खड़े हों अथवा बैठे, निरन्तर जारी रहता है ॥

## अभ्यास

(१) रक्त-संचार का क्या तात्पर्य है, और प्रकृति ने यह प्रबन्ध किस हेतु रक्खा है ?

(२) रक्त की शुद्धि शरीर के किस किस अवयव में होती है, और किस प्रकार से ?

(३) शुद्ध रक्त किसे कहते हैं और उसके क्या लक्षण हैं ?

(४) रक्त दूषित कैसे हो जाता है, और स्वच्छ रक्त से इसमें क्या भेद है ?

(५) दूषित और शुद्ध रक्त दोनों के गुण व दोष बतलाओ ?

(६) धमनी व शिरा का भेद वर्णन करो, और बड़ी शिराओं व धमनियों के नाम बताओ ।

(७) हृदय में शुद्ध रक्त जाता है या दूषित ?

(८) हृदय का क्या विशेष कार्य है ?

(९) फेफड़ों में कौन कौन सी धमनियाँ व शिराएँ गई हैं, और वे क्या काम करती हैं ?

(१०) ऊर्ध्व महाशिरा शरीर के किस भाग में है, और अधोगा महाशिरा किस भाग में और दोनों का काम क्या है ?

(११) रक्त का श्यामल वर्ण कब होता है और लोहित वर्ण कब ?

(१२) रक्त शरीर में किस भाँति और कहाँ से आता है, और किस भाँति कहाँ लौट जाता है ?

(१३) यदि दाहिनी हथेली की - धमनी और बाएँ जानु ( रान ) की शिरा में घाव हो जाए, और रक्त प्रवाहित होने लगे, तो रक्त-स्राव रोकने के लिए किस स्थान पर बन्धन करना चाहिये ?

(१४) फेफड़े के किस भाग में शुद्ध रक्त होता है और किस भाग में दूषित ?

(१५) रक्त-संचार का विस्तीर्ण वर्णन करो ।

# ६-स्नायु-जाल

## (क)-मस्तिष्क (दिमाग)
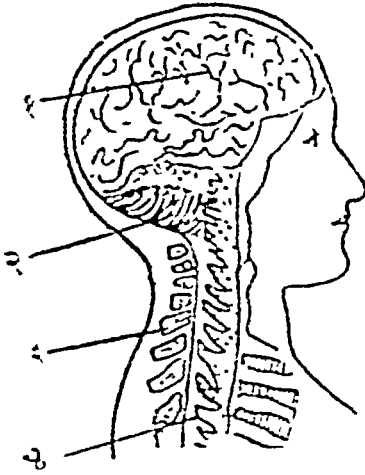
(१) मस्तिष्क की आकृति ।
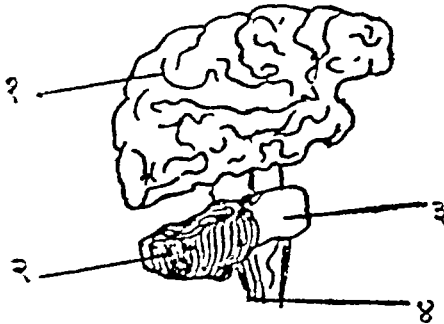
(२) मस्तिष्क के अवयव ।

प्राणिमात्र के शरीर में मस्तिष्क सबसे अधिक कोमल और

**मस्तिष्क**

उपयोगी अंग है। बुद्धि, विचार, और विवेक सम्बन्धी सारी शक्तियों का पूर्ण आधार मस्तिष्क पर है। इसलिए मस्तिष्क सारे अंशों का सम्राट है, सब अंग उसके आधीन हैं। प्रकृति ने भी मस्तिष्क को शरीर में सर्व्वोच्च स्थान प्रदान किया है। प्रकृति ने इसे कपाल मण्डल के ऐसे सुरक्षित गढ़ में बन्द किया है कि सामान्य आघातो से उसपर कोई प्रभाव ही न पड़े।

अन्य प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य का मस्तिष्क भारी होता है। यही कारण है कि जितना काम मनुष्य का मस्तिष्क करता है, उतना अन्य किसी भी जीवधारी का नहीं। एक युवा मनुष्य का मस्तिष्क तोल में लगभग डेढ़ सेर के है। परन्तु स्त्रियों के मस्तिष्क का गुरुत्व ½ पाव न्यून होता है। मनुष्य का मस्तिष्क प्राय: ४० वर्ष की आयु तक बढ़ता है, तदुपरान्त क्षीणता आरम्भ हो जाती है। प्रत्येक दशम वर्ष लगभग अर्द्ध छटाँक घट जाता है।

भेजे के ४ खण्ड होते हैं जैसा कि ऊपर की आकृति में

**मस्तिष्क की रचना**

पृथक् पृथक् दिखाया गया है। एक बृहत मस्तिष्क कहलाता है, जिसके दो खण्ड

होते हैं, दूसरा लघु मस्तिष्क कहलाता है, इसमें भी दो खण्ड होते हैं । तीसरा मस्तिष्क कहलाता है और चौथा सुषुम्ना का शीर्ष ।
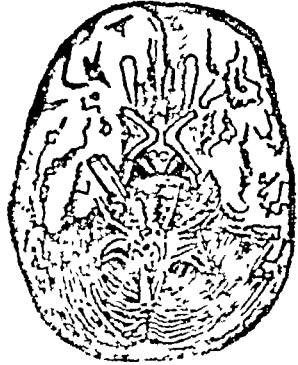
मस्तिष्क के परिणाह-परिमाण (बनावट) में तुम्हें दो प्रकार के पदार्थ मिलेंगे । बाहरी पृष्ठ पर धूसर पदार्थ होता है, जो स्नायविक कोषों से बनता है, इसमें विचार उत्पन्न होते हैं । उसकी भीतरी पृष्ठ में श्वेत पदार्थ होता है, जो स्नायविक सूत्रों से बनता है, इसमें विचार पूर्णता को प्राप्त होते हैं । हृदय की भाँति मस्तिष्क में भी क्षेपक कोष्ट होते हैं, परन्तु मस्तिष्क के क्षेपक कोष्टों की संख्या पाँच है और उनके विविध कार्य हैं ।

(१) मस्तिष्क की नीचे की पृष्टि की आकृति ।

**मस्तिष्क आवरण**

भेजे पर तीन आवरण चढ़े होते हैं–पहिला आवरण एक मोटी झिल्ली का होता है, जो कपालास्थि के नीचे स्तर सरीखा रहता है । यह झिल्ली मस्तिष्क मण्डल को लपेटे रहती है, और गुद्दी की हड्डी के छिद्र पर जाकर सुषुम्ना के आवरण से मिल जाती है । इसके अतिरिक्त बृहत् , और लघु मस्तिष्कों के दोनों खण्डों के मध्य में और बृहत् तथा लघु मस्तिष्कों के मध्य में भी उसका अंश रहता है ।

दूसरा आवरण एक महीन झिल्ली का होता है,जो मस्तिष्क के ऊपर अतिशय पतली और निर्मल पारदर्शक होती है। यह मस्तिष्क के नीचे जाकर स्थूल और धुन्धला हो जाता है।

तीसरा आवरण एक महीन झिल्ली का होता है, जो भेजे पर चिपका रहता है। इस पर रक्त के सूक्ष्म सूत्रों का एक जाल फैला रहता है। जो मस्तिष्क के भरण-पोषण के लिए आहार-सामग्री जुटाने का साधन है।

दूसरे और तीसरे पटल के मध्य में, दो स्थानों पर तनिक-तनिक सी तरलता रहती है, जो भेजे को रगड़ से बचाती है।

भेजे का सब से वृहत् खण्ड "वृहत् मस्तिष्क" कहलाता है।

वृहत् मस्तिष्क

उसका रूप अण्डाकार होता है। आगे को पतला और पीछे को चौड़ा। ऊपर की ओर गोल होता है, नीचे की ओर विषम। मस्तिष्क का यह खण्ड ज्ञान और बुद्धि का केन्द्र है। वृहत् मस्तिष्क लम्बाई की ओर से दो गोलार्द्धों में विभाजित होता है। जो शरीर के दोनों ओर आधो-आध रहते हैं। भेजे को निकाल कर देखो, तो उसमें बहुत सी लिपटनें दिखाई पड़ेंगी, जो मस्तिष्क के उभय गोलार्द्धों पर घुस घुमौवे की नालियाँ सरीखी ...ई देंगी। यह हमारी नाना प्रकार की कामनाओं और चेतनाओं के क्षेत्र हैं।

मस्तिष्क के दोनों भाग तीन तीन विभागों में विभक्त हैं।

सम्मुख विभाग कामनाओं का काम करता है, इसमें बुद्धि, विवेक ज्ञान मेधा,विचार और स्मरण व मनन इत्यादि की शक्तियाँ निहित होती हैं, इस लिए इसे "मानस क्षेत्र" कहते हैं। मस्तिष्क के पाश्चात्य विभाग का सम्पर्क हृषीकों या चैतन्येन्द्रियो यथा—आँख, कान, नाक प्रभृति-से है, उसे "संवेदन क्षेत्र" कहते है। इसका प्रबन्ध इस रीति से होता है, दाहिने गोलार्द्ध से शरीर के वाम भाग का संबन्ध है, और बाएँ गोलार्द्ध का संबन्ध शरीर के दाहिने भाग से है। उदाहरण के लिए पाद्ताघात (फालज) का रोग लो। जब मस्तिष्क के दाहिने गोलार्द्ध पर कोई आघात पहुँचता है, तो शरीर के बाएँ भाग के स्नायु बेकाम हो जाते हैं, और यदि दाहिनी ओर के स्नायु वृन्द में कोई दोष हुआ तो मस्तिष्क के बाएँ गोलार्द्ध पर कोई कष्ट पहुँचता है। यदि शरीर ही निष्कर्म या अचैतन्य हो जाए तो उसका तात्पर्य यह है कि मस्तिष्क के दोनों गोलार्द्ध निष्चेष्ट हो गए। यह भी आवश्यक नहीं कि किसी गोलार्द्ध के तीनों क्षेत्र एक साथ ही निष्चेष्ट हों, क्योंकि विक्षिप्त (पागल) मनुष्य सारा काम करता है केवल बुद्धि व ज्ञान शक्ति इसके खराब हो जाते हैं।

**लघु मस्तिष्क**

लघु मस्तिष्क गुद्दी की हड्डी के नीचे होता है। उसके भी दो विभाग होते हैं। एक नवयुक मनुष्य के लघु मस्तिष्क का गुरुत्व, साधारणतया तीन छटाँक तक होता है। परन्तु स्त्रियों का लघु मस्तिष्क पुरुषों की अपेक्षा अधिक भारी होता है। लघु मस्तिष्क की बनावट

में लिपटनों के स्थान पर रेखाएँ होती हैं, अलबत्ता, धूसर और श्वेत पदार्थ वृहत् मस्तिष्क ही की भाँति होते हैं।

लघु मस्तिष्क से सम्बन्ध रखने वाले स्नायु हृदय के कार्य की देख रेख के लिए होते हैं। यदि लघु मस्तिष्क निकाल लिया जाए, तो मनुष्य जीवत रह सकता है, और सारा काम जिन का सम्पर्क वृहत् मस्तिष्क से है, यथावत् होता रहेगा, केवल स्नायुओं की प्रक्रिया में विकृति आ जाएगी। वह चल न सकेगा, खड़ा न हो सकेगा। लघु मस्तिष्क स्नायु-मण्डल में संचालन नहीं उत्पन्न करता, न इसमें हिलाने डोलने की चेष्टा ही होती है, यह दोनों काम वृहत् मस्तिष्क के हैं। लघु मस्तिष्क हमारे कामों में क्रम-नियम उत्पन्न करता है, और अंगो को उनकी परिस्थिति में स्थायी बनाता है।

मस्तिष्क का सेतु

मस्तिष्क का "सेतु" खड़े व वेंड़े सूत्रो का एक बन्धन है, जो वृहत् और लघु मस्तिष्कों को सुपुम्ना शीर्ष से संयोजित करता है उसके वेंड़े सूत्र तो वृहत मस्तिष्क के दो गोलार्द्धों को मिलाते हैं। दोनो सिरे लघु मस्तिष्क में संयुक्त होते हैं, और वह स्वयं सुपुम्ना शीर्ष पर रहता है। मस्तिष्क का सेतु स्तंभ रूप से एक इंच ऊंचा और वेंड़े रूप से १½ इंच लम्बा होता है। इसे "सेतु" इस लिए कहते हैं कि, मस्तिष्क सम्बन्धी सब कार्यवाहियाँ इनके द्वारा पार करके एक मस्तिष्क से दूसरे मस्तिष्क में और सुपुम्ना में पहुँच जाय।

सुपुम्ना, जिसके विषय में तुम आगे पढ़ोगे, जिस स्थान पर

सुपुम्ना शीर्ष

मस्तिष्क से संबद्ध होती है, उस भाग को "सुपुम्ना शीर्ष" कहते हैं। यह एक शुण्डाकार अंग है, जो सवा इंच-पौने दो इंच चौड़ा डेढ़ इंच मोटा होता है। इसका गुरुत्व छः सात माशे होता है। उसके मध्य सुपुम्ना की नाड़ी होती है, अनेक मस्तिष्क स्नायु उसमें से निकलते हैं। यह मस्तिष्क और सुपुम्ना का मध्यवर्त्ती संबन्ध है। बहुत से स्नायुओं क सूत्र सुपुम्ना शीर्ष से हो कर मस्तिष्क से सुपुम्ना को और सुपुम्ना से मस्तिष्क को जाते हैं। इसके अधिकार में शरीर के प्रधान और आवश्यक मूल भाग हैं, जिन पर जीवन निर्भर है यथा—श्वास हृदयस्फुरण, रक्त वाहिनी रगों की प्रक्रिया व पसीना। मस्तिष्क के अन्य भागों पर यदि कोई अघात पहुँचे, तो उसका प्रभाव मानव जीवन पर नहीं पड़ता, परन्तु सुपुम्ना के शीर्ष का आघात तुरन्त मरण का कारण हो जाता है, सुपुम्ना शीर्ष निम्न लिखित कार्यों का केन्द्र है—आँख बन्द करना, खाँसना, चूसना, चबाना, छींकना, लाला, उत्पादन, निगलना, वमन करना और व्यति क्रम कार्यकारी अंगों की गति विधि को क्रमानुसार रखना॥

## अभ्यास

(१) मस्तिष्क क्या वस्तु है, और मनुष्य के मस्तिष्क में, और पशुओं के मस्तिष्क में क्या अन्तर है?

(२) मस्तिष्क की बनावट कैसी है ?

(३) मस्तिष्क के आवरणों और पदार्थों का वर्णन करो।

(४) मस्तिष्क के कितने भाग और विभाग होते हैं ?

(५) बृहत् मस्तिष्क का वर्णन करो और उसका काम बताओ।

(६) मस्तिष्क के क्षेत्रों से तुम क्या समझते हो ?

(७) हमारे शरीर के अंगों से बृहत् मस्तिष्क का क्या सम्बन्ध है और किस प्रकार ?

(८) लघु मस्तिष्क क्या वस्तु है और उसका क्या काम है ?

(९) मस्तिष्क के सेतु से तुम क्या समझते हो, और वह क्या काम काम करता है ?

(१०) सुषुम्ना शीर्ष और लघु मस्तिष्क की विशेषताओं की तुलना करो।

(११) हमारे जीवन का आश्रय मस्तिष्क के किस प्रधान भाग पर है और किस प्रकार का ?

(१२) सुषुम्ना शीर्ष में वह कौन सी बातें हैं, जो मस्तिष्क के अन्य भागों में नहीं पाई जातीं ?

(१३) निम्न लिखित रोगों में तुम मस्तिष्क की प्रक्रिया के विषय में क्या विचार निश्चित् करोगे, सविस्तार और सप्रमाण बताओ:—

बहिरापन, किसी वस्तु का स्वादु न जान पड़ना, स्मरण शक्ति का ह्रास, बाएँ टाँग का रह जाना, पागल हो जाना, हृदय की गति स्थगित हो जाना, मूर्छित हो जाना, चलने में लड़खड़ाना, बातें समझ लेना परन्तु बोल न सकना, हाथों के बल टाँगें घसीट कर

चलना, चक्कर आ जाना, ढेला आते देख कर चट आँखें मूँद लेना, भोजन परोसा देख कर मुँह में पानी भर आना।

(१३) निम्न लिखित कामों में मस्तिष्क का काम बताओ—

शकर का मीठा लगना, सिर पर चोट लगने से गिर पड़ना और रो पड़ना, शर्बत का मिठास के कारण पी लेना, ग्रीवा (गरदन) पर घूसा मारने से तुरन्त प्राणान्त हो जाना। प्यास का बोध होना और जल लेने के लिए हाथ का बढ़ाना, परन्तु गिलास हाथ से छुट जाना, अथवा हाथ का न उठाना, डर जाने से हृदय की धड़कन का बढ़ जाना।

---

# (ख)–नाड़ी मण्डल

## पट्ठे

शरीर की यन्त्र प्रणाली को चलाने वाला कुशल इंजीनियर मस्तिष्क है। उसके नायब नाड़ियां हैं। यदि यह दोनों न हों तो हाथ-पांव व्यर्थ हैं। शरीरिक अंग उस समय तक काम नहीं कर सकते जब तक नाड़ियाँ उनसे काम न लें। और नाड़ियाँ उस समय तक निश्चेष्ट हैं, जब तक मस्तिष्क की प्रेरणा न पहुँचे। दृष्टान्त के लिए हम किसी लड़के को जो दूर खड़ा है; कोई आवश्यक पत्र देना चाहते हैं। इसके लिए विवेक-शक्ति मस्तिष्क को सूचना देती है कि अमुक लड़के को पत्र देने की इस कारण आवश्यकता है; मस्तिष्क हमारा

टाँगो की नाड़ियों को शासन करता है। आँखों की नाड़ियां
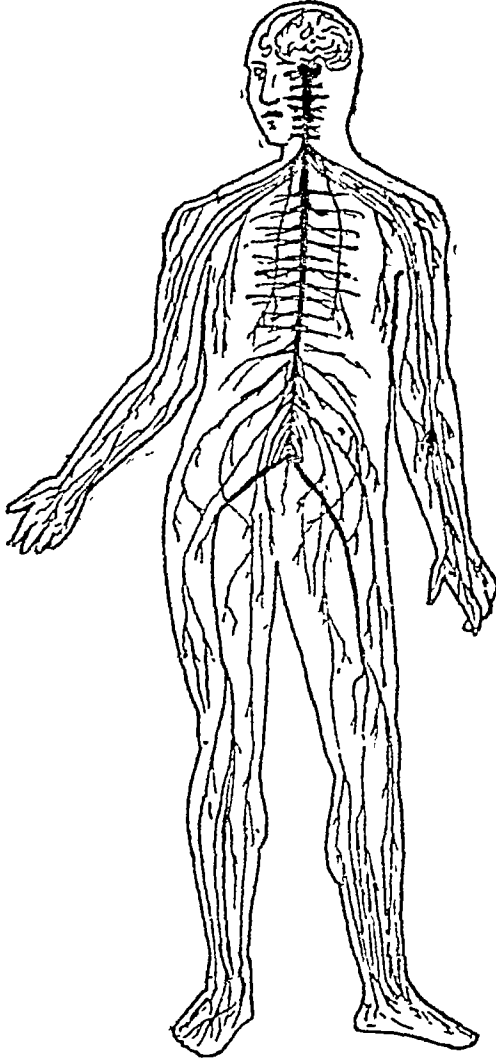
स्नायु-संस्था या नाड़ी-मण्डल

को आज्ञा देता है कि मार्ग बताओ, और हाथ की नाड़ियों को आज्ञा करता है कि पत्र दो। इधर लघु मस्तिष्क देखता रहता है कि दौड़ते समय हमारे शरीर का बोझा स्थिर रहे, और हम गिरने न पाएँ। परिणाम यह होता है कि हमारी टाँगें, हाथ, आँखें सभी अपना काम करने लगते हैं, और पत्र पहुँच जाता है।

नाड़ियों की बनावट और उनके प्रकार

नाड़ियाँ वह श्वेत रंग की मोटी व महीन नसें हैं, जो मस्तिष्क या सुपुम्ना से निकलती हैं, और सम्पूर्ण शरीर में में एक जाल-सा बनाए होती हैं। प्रान्तस्थ नाड़ियाँ ( स्थान के विचार से ) तीन प्रकार की होती हैं। एक वह स्नायु जो मस्तिष्क से निकलते। हैं, दूसरे वह जो सुपुम्ना से निकलते हैं यह स्नायविक ग्रन्थियाँ भी नाड़ियों में परिगणित हैं, जो दो कड़ों के रूप में कशेरुका की गुरियों के सम्मुख दोनों पार्श्व में कपाल की छड़ से लेकर हन्वस्थि ( ठुड्डी की हड्डी ) तक चली गई है।

नाड़ियों के प्रकार प्रक्रिया के विचार से

प्रक्रिया, के विचार से नाड़ियो के दो प्रकार हैं— "सांवेदनिक" और "चालक" "सांवेदनिक" नाड़ियाँ वह पट्ठे कहलाते हैं जिनके द्वारा मस्तिष्क को वस्तुओं की दशा वा अवस्था का ज्ञान होता है, और गति सम्बन्धी व "चालक" नाड़ियाँ वह पट्ठे हैं जो शरीर के अंगों व अवयवों

यथा—ओले (पेशियाँ), केश, रक्तवाहिनियाँ, चर्म तरलताएँ, उष्णतादि पर शासन रखते हों, और उन्हें गति देते या चलाते हैं।

चालक नाड़ियों के अधीन एक और प्रकार के पट्ठे भी होते है, जो "गति रोधक" हैं, अर्थात् जिनसे रक्त वाहिनियों में रक्त का संचार या हृदय आदि की धड़कन धीमी पड़ जाती है इस प्रकार चालक नाड़ियाँ दो भाँति की हुईं, एक तो संचालक अर्थात् गति देने वाली और दूसरी रोधक अर्थात् संचालक को रोकने वाली।

मास्तिष्क अर्थात् मस्तिष्क सम्बन्धी नाड़ियाँ २४ होती हैं।

**मस्तिष्क नाड़ियाँ**

१२ दाहिने शारीराँग में और १२ बाएँ शरीराँग में। गन्ध सम्बन्धी या "घ्राण नाड़ियाँ"—जो नासिका व मस्तिष्क के सम्मुख तली के बीच में होती हैं। देखने की "दृष्टि नाड़ियाँ"—जो दाहिने मस्तिष्क विभाग से बाईं आँख को; और बाएँ मस्तिष्क विभाग से दाहिनी आँख को जाती हैं, नेत्र विषयक अन्य अन्य नाड़ियाँ चेहरे की नाड़ियाँ। सुनने की श्रावणी नाड़िया जो कान और मस्तिष्क के बीच में होती हैं। जिह्वा व कण्ठ नाड़ियाँ। ग्रीवा की नाड़ियाँ और फेफड़े व पाकस्थली की नाड़ियाँ इत्यादि।

सुषुम्ना या मस्तिष्क मज्जा, यथार्थ में मस्तिष्क का एक मज्जा रूपक (गूदेदार) अंश है, जो नाड़ी या नलिका के रूप में बढ़कर गुद्दी की हड्डी के छिद्र से निकलती है, और काशेरु की नली की नाली में चलती हुई, कटि के दूसरे गोट पर पहुँच कर "अश्व-पुच्छ" घोड़े की दुम की भाँति सूक्ष्म सूक्ष्म शाखाओं में विकीर्ण हो जाती है। वस्तुतः सुषुम्ना स्वयं ही एक सब से बड़ी और मोटी नाड़ी है, जिससे अन्य सभी नसें निकली हैं।

सुषुम्ना

सुषुम्ना के मिश्रण अंश और आवरण ठीक वैसे ही हैं, जैसे मस्तिष्क के। बीच में दोनो ओर एक रेखा होती है। सुषुम्ना को बीच से काट कर देखा जाए, तो उसके धूसर पदार्थ के मध्य में दो सींग सरीखे चिन्ह लगे देखोगे, जो स्नायविक कोषाणुओं के मिलने से बनते हैं। दोनों के मध्य में एक महीन नाली होती है। जिसमें तरल रस भरा होता है। जैसा कि नीचे की आकृति में दिखाया गया है। इन शृंगों की छुटाई बड़ाई सुषुम्ना के मोटे और पतले के अनुसार होती है। जहाँ सुषुम्ना स्थूल होती है, यह शृंग भी दीर्घ होते हैं, और जहाँ क्षीण होती है यह शृंग लघु होते हैं।

सुषुम्ना का काट
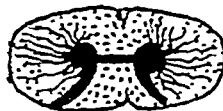
सौपुम्नं नाड़ियाँ ६२ होती हैं। ३१ शरीरांग की एक ओर और ३१ दूसरी ओर। प्रत्येक नाड़ी गुरियों के मध्यवर्ती छिद्र से निकलती हैं, और बाहर होकर शरीर के भिन्न भिन्न अंगों में फैल जाती हैं। सुषुम्ना की प्रत्येक नाड़ी की दो जड़ें हैं, जो एक एक दोनों शृंगों की दोनों नोकों से निकलती हैं, और कुछ दूर चलकर एक दूसरे से मिल जाती हैं, और गुरियों के छिद्र से समीप आजाती है। इस प्रकार इन दो दो मूलों के मिल जाने से एक एक पूरी नाड़ी बन जाती है। जिस स्थान पर शृगो की यह दोनों पूर्व और पाश्चात्य ( अगली और पिछली) नाड़ियाँ अथवा "मूलें" परस्पर मिलती हैं, वहाँ उनके पारस्परिक सहयोग से कुछ ऊपर पाश्चात्य मूल में एक गाँठ सी बन जाती है। इसको पाश्चात्य मूल का "स्नायविक गंठ" या "नाड़ी ग्रन्थि" कहते हैं।

सुषुम्ना की नाड़ियाँ

उपयोगिता के विचार से पूर्वमूल "चालक" होती हैं। इसी की सहायता से नाड़ियाँ संचालित होती है। पाश्चात्यमूल सांवेदनिक होती है, जिसमें कोमलता, कठोरता, शीतलता और उष्णता इत्यादि का बोध होता है। साँवेदनिक या चैतन्यशील नाड़ियाँ इतने बाहुल्य से हमारे शरीर में बिखरी हुई हैं कि शूच्यग्रमात्र (सूई की नोक बराबर) भी ऐसा स्थान ऐसी चैतन्यता शक्ति या साँवेदन शक्ति से रहित हो।

१—पूर्व (अगली) मध्यवर्ती रेखा।
२—पाश्चात्य मध्यवर्ती रेखा।
३—पूर्व नाड़ी-मूल। पाश्चात्य नाड़ी-मूल।
४—कटी हुई पूर्व व पाश्चात्य मूलें।
५—स्नायविक गण्ड (नाड़ी-ग्रन्थियाँ)।

सुषुम्ना का काट नाड़ी-मूलों समेत

सुषुम्ना के कार्य
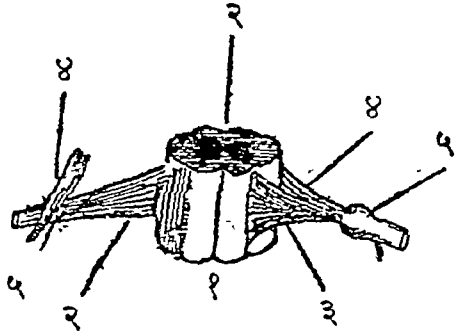
सुषुम्ना के दो काम हैं। अंगों या इन्द्रियों की समवेदना के परिणाम को मस्तिष्क तक पहुँचाना, और मस्तिष्क की आज्ञाओं की सूचना चालक नाड़ियों को देना। अस्तु, स्पष्ट है कि यदि सुषुम्ना अथवा सौषुम्न नाड़ियों पर कोई आघात पहुँच जाए, तो न तो चालक नाड़ियाँ, मस्तिष्क से सम्बन्ध विच्छेद हो जाने के कारण अपना कार्य कर सकेंगी और न चेतना या संवेदना की सूचना ही मस्तिष्क तक पहुँच सकेगी।

इसका दृष्टान्त इस प्रकार समझना चाहिए कि नैनीताल से प्रयाग तक तार लगा हुआ है, उसका केन्द्र लखनऊ में है। जो समाचार नैनीताल से प्रयाग या प्रयाग से नैनीताल आते जाते हैं, वह लखनऊ के प्रधान दफ़्तर से हो-कर जाते हैं। अब

यदि प्रयाग में दंगा हो जाय, और उसके प्रबन्ध के लिए सेना इकट्ठी हो, और नैनीताल के अनुशासनों पर प्रबन्ध हो रहा हो, परन्तु संयोगवश, यदि प्रधान केन्द्र लखनऊ में तार कट जावे, या लखनऊ से कुछ पहिले राय-बरेली में उत्पाती लोग तार काट दें तो फल यह होगा कि प्रयाग का कोई समाचार नैनीताल न पहुँच सकेगा और न नैनीताल से ही कोई आज्ञा सेना के लाने या ले आने या दंगा को दमन करने की आ सकेगी। सेना अपने स्थान पर पड़ी रहेगी, दंगा वाले ऊधम मचाए रहेंगे, और गवर्नमेंट निश्चिन्त बैठी रहेगी।

सुषुम्ना का दूसरा कार्य "प्रत्यावर्त्तन" है। प्रत्यावर्त्तन या "परावर्त्तित क्रिया" वह कार्य है जिससे मस्तिष्क का कोई सम्पर्क नहीं होता, सुषुम्ना ही संवेदना और संचालन दोनों कामों को करती है। ऐसी दशा में मनुष्य को अपने कार्य का कोई ज्ञान नहीं होता। क्योंकि इस काय का मस्ष्तिक से कोई सम्बन्ध नहीं होता, यद्यपि अंगों से वह क्रिया प्रकट होती है। उदाहरणार्थ—यदि किसी व्यक्ति की सुषुम्ना को बीच से चोट पहुँच जाय, और मस्तिष्क से उसका लगाव न रहे, तो परिणाम यह होगा कि शरीर का नीचे का खंड निश्चेष्ट हो जाएगा। वह यदि टाँग को उठाना चाहे, तो न उठा सकेगा। उसके पाँव में यदि सूई चभो दी जाय तो उसे बोध नहीं होगा। यह सभी बातें इस कारण उत्पन्न हो जाएँगी, कि मस्तिष्क को उस अंग

से कोई सम्बन्ध नहीं रहा। उसके साथ ही यदि टाँग में सूई गड़ाई जाये तो टाँग सिमट जाएगी, यद्यपि टाँग वाले को पता भी नहीं कि उसकी टाँग सिमटी अथवा नहीं। टाँग इस कारण से सिमटती है, कि चैतन्य-शीघ्र नाड़ियाँ जो इस टाँग और सुषुम्ना के अधोवर्ती स्वस्थ भाग में लगी हुई हैं, अपनी प्रक्रिया करती हैं, किन्तु इसके ठौर की उसकी संवेदना मस्तिष्क तक जाती, और वहाँ से कार्यकारी नाड़ियों का संचालन होता है। इस प्रकार सुषुम्ना ही इस काम को कर लेती है। सांवेदनिक नाड़ियाँ एक ओर इस चैतन्य के फल को सुषुम्ना तक पहुँचाती हैं, और यह सूचना सुषुम्ना की सांवेदनिक नाड़ियों की जड़ में पहुँचती, और दूसरी ओर चालक नाड़ियों की जड़ मे, जो इसके निकट ही रहती है, संचालन करती है, और टाँग सिमट जाती है।

दूसरा दृष्टान्त यों है—तुमने बहुधा देखा होगा कि लोग बातें भी करते जाते हैं और हाथ में माला लिए माला के मनके भी शीघ्र शीघ्र गिनते जाते हैं, और ऐसा जान पड़ता है कि कुछ पढ़ रहे हैं। यदि तुम बिना अभ्यास किये हुए ऐसा करना चाहो तो, नहीं कर सकते। ज्यों ही बातें करने लगोगे, हाथ रुक जाएगा। क्योंकि मस्तिष्क का ध्यान हट जाता है, परन्तु स्वभाव पड़ जाने के पश्चात् सुषुम्ना मस्तिष्क की अधीनता से मुक्त हो जाती है, और स्वयं वह काम करने लग जाती है जो पहले मस्तिष्क की आज्ञा और प्रेरणा से होता था।

ऐसी दशा में माला फेरने वाले को भी कुछ ज्ञान नहीं रहता कि वह दाना गिन रहा है या बातें करता है। यद्यपि उसकी अँगुलियाँ निरन्तर दानों पर चला करती हैं। यही सुषुम्ना की "परावर्त्तित क्रिया" कहलाती है।

पिंगल या सौहार्द सूचक नाड़ी मण्डल या नाड़ी गण्ठ की श्रृङ्खला

कशेरुका के बाहर दोनों ओर स्नायविक ग्रन्थियों की लड़ें होती हैं, जो कपालकोटर से लेकर दुमची तक चली जाती हैं। इन ग्रन्थियों से स्नायविक सूत्र पैदा होते हैं, जो उन्हें सुषुम्ना और सौषुम्न नाली से एक ओर संयुक्त करते हैं, और स्वयं एक दूसरे को जोड़ते हैं। उनके अतिरिक्त और सूत्र भी फूटते हैं, जो उदर और वक्ष के आन्तरिक अंगों यथा—हृदय, फेफड़े, आन्तों व रक्तवाहिनियों इत्यादि में जाकर एक स्नायविक जाल बना देते हैं। इन नाड़ियों का सम्बन्ध उन अंगों से है जो अपने संचालन में मस्तिष्क की एच्छिक शक्ति के आधीन नहीं हैं। यद्यपि उन संचालनों का केन्द्र मस्तिष्क और सुषुम्ना ही में होता है। इन गण्डों के २८ जोड़ होते हैं—चार शिर में, तीन ग्रीवा में, बारह पीठ में, चार कटि में, पाँच वस्तिगह्वर (कमर से नीचे) में और एक दुमची की हड्डी (गुदास्थि) में। रक्त-संचार, हृदय और रक्तवाहिनियों का संचालन, श्वास, शरीर-संचालन, ग्रन्थियों (गिल्टियों) के द्रव-रस का उत्पादन और आहार पाचन के नियम इन्हीं नाड़ियों के वश में हैं।

## अभ्यास

(१) नाड़ियों का क्या काम है, और वे अपना काम किस प्रकार करती हैं ?

(२) नाड़ियों की रचना कैसी है, और कितने प्रकार की होती है ?

(३) प्रक्रिया के विचार से नाड़ियों के कितने प्रकार हैं, प्रत्येक की व्याख्या और विवरण करो।

(४) मस्तिष्क-नाड़ियाँ कितनी हैं, और उनका काम क्या है ?

(५) सुषुम्ना क्या वस्तु है, और उसकी बनावट कैसी है ?

(६) सुषुम्ना के एक कटे हुए खंड की आन्तरिक दशा वर्णन करो।

(७) सुषुम्ना की नाड़ियों का सविस्तार वर्णन करो और उनकी विशेष क्रियाएँ बताओ।

(८) सुषुम्ना के कार्य क्या हैं ?

(९) सुषुम्ना की नाड़ियों का मस्तिष्क से क्या लगाव है, और किस प्रकार का ?

(१०) सुषुम्ना की "परावर्त्तित क्रिया" से तुम क्या समझते हो, व्याख्या करो।

(११) पिंगल या सौहार्द सूचक नाड़ी मण्डल का पूरा वर्णन सविस्तार लिखो।

(१२) पिंगल नाड़ी मण्डल के आधीन क्या क्या काम हैं ?

(१३) पिंगल नाड़ियों का सम्बन्ध मस्तिष्क से किस प्रकार से है ?

(१४) निम्न लिखित घटनाओं में क्या क्या दशाएँ होंगी:—

(क) यदि सुषुम्ना को बीच से लम्बा चीर दिया जाए ?

(ख) यदि सुषुम्ना को पीठ के स्थान से काट दिया जाए ?

(ग) यदि सुषुम्ना की नाड़ियों की पाश्चात्य मूल काट दी जाए ?

(घ) यदि सुषुम्ना की नाड़ियों की पूर्व मूल काट दी जाए ?

(च) यदि सुषुम्ना की नाड़ियों की दोनों मूलें काट दी जाएँ ?

(छ) यदि सुषुम्ना की नाड़ी को पाश्चात्य मूल के नाड़ी गण्ड के नीचे कुछ दूर काट दिया जाए ?

(१५) निम्न लिखित घटनाओं में क्या मस्तिष्क व नाड़ी सम्बन्धी दशाएँ होंगी:—

(क) यदि सुषुम्ना को बीच से तोड़ दिया जाए, और दोनों टाँगों में दो सूइयाँ चुभो दी जाएँ ?

(ख) यदि सुषुम्ना की पाश्चात्य नाड़ी-मूल काट दी जाए और
(१) सुषुम्ना से खंडित मूल में दग्धाया जाए।
(२) सुषुम्ना से सम्मिलित मूल में दग्धाया जाए ?

(ग) यदि सुषुम्ना की पूर्व नाड़ी-मूल काट दी जाए और
(१) सुषुम्ना से खंडित मूल में आलपीन चुभोई जाए।
(२) सुषुम्ना में सम्मिलित मूल आलपीन चुभोई जाए ?

(घ) यदि सुषुम्ना की दोनों मूलें काट दी जाएँ और (१) सुषुम्ना से खंडित मूल को दग्धाया जाए (२) सुषुम्ना में सम्मिलित दोनों मूलों को दग्धाया जाए ?

(१६) निम्न लिखित घटनाओं में क्या सिद्धान्त निकलेंगे:—

(क) एक व्यक्ति की टाँग काट डालें, परन्तु न उसके पीड़ा बोध हो, न हाथ पाँव का संचालन हो ?

(ख) एक व्यक्ति की टाँग को दबाने से पीड़ा तो हो, परन्तु वह टाँग न हटावे ?

(ग) एक व्यक्ति की टाँग में छुरी भोंकने से वह टाँग तो हटावे, परन्तु उसे कुछ पीड़ा न जान पड़े ।

# सातवाँ पाठ

## भोजन, पानी और शुद्ध वायु

हमारे शरीर का यन्त्र

तुमने स्टेशन पर देखा होगा कि रेल के छोटे छोटे इंजिन माल से लदी हुई सैंकड़ों केराचियों को जिनका बोझ लाखों मन होता है, सुगमता और तीव्र वेग से सहस्रों मील धड़ल्ले से खींचे लिए जाते हैं । यदि ध्यान पूर्वक देखो तो तुम्हारी समझ में आ जाएगा कि, यह राक्षसी शक्ति केवल उस इंजिन की नहीं है, जो लोहे की चद्दरों से बनाया गया है, परन्तु यह विस्मयकारी आसुरी बल कोयला आग और पानी का है जो इस इंजन में भरा रहता है । यदि वह वस्तुएँ निकाल दी जाएँ, तो इंजिन एक निष्क्रिय बेकाम

पदार्थ रह जायगा। ठीक यही दशा शरीर के यन्त्रों की है, इसके लिए भी कोयला, आग और पानी की आवश्यकता है। यदि यह वस्तुएँ हमारे शरीर को न मिलें, तो शरीर का यन्त्र रुक जाएगा।

तुम को इस बात का विश्वास न होगा, कि कोयला हमारे शरीर में जलता है। किन्तु विचार करने से ज्ञान होगा कि, हमारे शरीर कों मांस पेशियां भट्टी सरीखी हैं, जिन मे प्रकृति की प्रेरणा से शरीर की उष्णता स्थापित रखने के लिए ताप का प्रबन्ध है। ताप अग्नि से उत्पन्न होता है। अग्नि के लिए ईंधन की आवश्यकता है। ईंधन उत्तमतर प्रकार का काष्ठ और कोयला है। परन्तु यह शरीर की उष्णता में जलने के योग्य नहीं, अतएव, प्रकृति ने तीन प्रकार की ईंधनें इस अग्नि में जलने के लिए उत्पन्न की हैं। एक तो कोयला का विशेष मिश्रण जो शकर और निशास्ता कहलाता है, और बनस्पतियो की हरयाली में पाया जाता है। यह वस्तु पत्तियों में घाम के प्रभाव से बना करती है। अनुभव के लिए तुम किसी पौदे को थोड़ी देर के लिए छाया में रखदो, परिणाम यह होगा कि, निशास्ता बनाना बन्द हो जाएगा और पत्तियाँ पीली पड़ जाएँगी। दूसरी जलने वाली वस्तु वसा (चिकनाई) है, और यह भी भाजी, तरकारी, और अन्यान्य अहारों में यथावत् रहती है। तीसरा ईंधन वह मिश्रणांश है जो ओपजन, अम्बुजन कार्बन, तर्व्यजन और गन्धक से

आहार क्या वस्तु है

मिलकर बनता है, और सम्पूर्ण वनस्पति वर्ग में व्याप्त और प्राप्त होता है।

परन्तु स्मरण रखना चाहिए, कि हमारा आहार कोयला मात्र ही का काम नहीं करते, इन में कुछ आवश्यक सामग्रियाँ और होती हैं । उदाहरणार्थ तुमने इंजिन और अन्य यन्त्र-प्रणालियों में देखा होगा कि, उनमें कभी कभी तेल भी देते हैं, जिससे पुरजे घिसें नहीं, और सुगमता से चल सकें। प्रकृति ने इन आहारों में शरीर के भीतर चिकनाई पहुँचाने का प्रबन्ध किया है । व्यवहार से यन्त्रों के पुर्जे निरन्तर घिसते व टूटते फूटते रहते हैं, और उनके स्थान पर दूसरे कल-पुर्जों की आवश्यकता होती है। हमारे अहारों में भी प्रकृति की प्रेरणा से ऐसे अँग विद्यमान हैं, जिनके मानवीय शरीर की वह त्रुटियाँ, जो अँगों की अधिक उपयोगिता से उत्पन्न होती हैं, पूर्ण हो जाएँ।

दूसरी वस्तु अग्नि है। शरीर में इस अग्नि का भी प्रबन्ध है। शुद्ध वायु की ओषजन शरीर की इस अग्नि के प्रज्वलित होने में सहायता देती है। तीसरी वस्तु पानी है। यह भी हम अपने शरीर में जल-पान करके पहुँचाते रहते हैं । अब हम परिवर्णित तीनों वस्तुओं का विस्तीर्ण वर्णन करेंगे।

## (क) आहार

हम बतला चुके हैं, कि नित्य-नियम के व्यवहार से हमारी नाड़ियों, पेशियों और इन्द्रियों में टूट फूट, त्रुटि और निर्बलता उत्पन्न होती रहती है, और आहार के द्वारा इन क्षतियों (छीज) की पूर्ति होती रहती है। यदि ऐसा न हो तो मनुष्य कुछ ही दिवस में जर्जर और दुर्बल हो जाए, और हाथ पाँव निरुत्तर हो जावें। शरीर पोषण के अतिरिक्त आहार से दूसरा लाभ यह है कि वह शरीर की उष्णता स्थापित रखता है।

**आहार की आवश्यकता**

नियम है कि प्रत्येक वस्तु का जोड़ा उसकी अनुरूपता के विचार से उसमें लगा दिया जाता है। यह नहीं होता कि लोहे के टुकड़ों को जोड़ने के लिए चूने का पलस्तर लगा दिया जाए या कपड़ा सीने में राँगे का टाँका दिया जाए। तुम जानते हो कि उपयोग के कारण शरीरांगों में टूट फूट, छीज और कमी निरन्तर हुआ करती है, अतएव, आवश्यकता इस की हुई कि हमारे आहारों में भी वही अंश उपस्थित हों, जो हमारे शरीर में पाए जाते हैं। जिनसे जिस अंश की त्रुटि हो वह पूर्ण हो जाए।

**शरीर और आहार के रासायनिक अंशों में सादृश्यता**

शरीर के रासायनिक द्रव्य १४ हैं—यह दो प्रकार के होते हैं—समीर तत्व, और क्षिति-तत्व। समीर-तत्व (वायवीय) ५ हैं, और क्षिति-तत्व (पृथ्वीय) ९ हैं।

समीर-तत्व ये हैं:—

(१) ओषजन या अक्सिजन। (३) तर्व्यजन या नेट्रोजन

(२) अम्बुजन या हैड्रोजन। (४) शाद्वलीन (क्लोरीन)

(५) सावीन ( या सोरीन )

क्षिति-तत्व ये हैं:—

(१) अँगारजन या कार्बन। (२) स्फुलिंगजन या प्रस्फुर (फासफोरस)। (३) गन्धक। (४) अवस (गिरीसार) या लोहा। (५) खटिकाश्म या कैलसियम। (६) सुवासार या सुवाश्म या सोडियम। (७) पुटक्षार या पुटाश्म या पोटासियम (८) मंगनीस या मैगनीसियम (९) शैलिका (सिलीका)।

शारीरिक रासायनिक अंशों के विचार से प्रकृति ने हमारे आहारों में भी वही अंश रक्खे हैं जो सब खाद्‌ पदार्थों में अधिक या न्यून पाए जाते हैं, चाहे वह शाकवर्ग हो, या अन्न माँस की कोई भाँति हो।

**आहार के रासायनिक द्रव्य**

(१) हमारे शरीर में ओषजन और अम्बुजन की मात्रा और सिश्रणांशों की अपेक्षा अधिक है। अतएव मारे भाजनों में भी पानी की मात्रा दो-तिहाई से अधिक होती है क्योंकि पानी ओषजन और अम्बुजन के संयोग से बनता है।

(२) क्योंकि तर्व्यजन दूसरे अंशों के साथ मिल कर हमारे शरीर की अस्थियाँ, माँस, रक्त, नसें और नाड़ियाँ बनाती हैं,

अतः हमारे आहारों में भी तन्दर्य के यौगिक अंश होते हैं, यथा-मांस, अण्डे, मछली, दूध, दही, गेहूँ, चने, मटर, मूँग, माष इत्यादि। ऐसे अहारो को "पलोत्पादक" अर्थात् मांस-वर्द्धक भोजन कहते हैं जा तन्दर्यंजन की त्रुटी को पूरा करते रहते हैं।

(३) ओषजन और कार्बन के पारस्परिक सम्मिश्रण से ताप और उष्णता उत्पन्न होती है, अतएव हमारे आहारों में मेद या वसा (चरबी) घृत, और तेल इस आवश्यकता को सम्पूर्ण करते हैं, और अस्थि सन्धियों में चिकनाई उत्पन्न करते हैं। ऐसे आहार "स्नेहाक्त (चिकना) उष्ण भोजन" कहलाते हैं।

(४) स्नेहाक्त भोजन से कम उष्णता व वसा (चिकनाई) उत्पन्न करने वाली वस्तुएँ निशास्ता व शक्कर हैं, जो कार्बन व अम्बुजन और ओषजन के सन्मेलन से वनती हैं, इनको "कार्बोज व शर्करीमय भोजन" कहते हैं, यथा-निशास्ता, चावल, शक्कर अरारोट, और आलू इत्यादि।

(५) हमारे शरीर के अंगो में अन्य अंशों की अपेक्षा अनेक प्रकार के लवण, चूना और लोहा सम्वन्धी अंश भी पाए जाते है।

आयस (लोहे के) अंशों से रक्त की रंगत हो जाती है, चूने से हड्डी वनती हैं, शैलिका से दांतों में कठोरता और चमक उत्पन्न होती है, और दूसरे शरीर के नमकीन अंश कफ, वात, रक्त, पसीना, माँस इत्यादि में पाए जाते हैं। अतः

इनकी त्रुटि को भोजन का नमक, माँस और भाजी तरकारी के नमक पूरा करते हैं।

रोजाना कामों को देखते हुए प्रत्येक मनुष्य के भोजन की सामग्री की आवश्यकता भिन्न भिन्न होती है। शारीरिक श्रम करने वाले के शरीर में ऐसी वस्तुओं की कमी अधिकतर हुआ करती है, जिनका सम्बन्ध शरीर से है। इसके विपरीत, मस्तिष्क का श्रम करने वालों के भीतर मस्तिष्क के अंशों का व्यय अधिक होता है। क्योंकि जिस शरीरांग की प्रक्रिया अधिक वेगवती होगी, उसी अंग का मिश्रणाँश अधिक पचेगा। इस समस्या को ध्यान में रखते हुए हम देखेंगे कि मांसोत्पादक भोजनों की आवश्यकता बालकपन में सबसे अधिक होती है और जवानी में साधारण गुणकारी और वृद्धिकारी वस्तुओं की। एक युवा मनुष्य को साधारण रीति से लगभग आध पाव के मांसोत्पादक भोजन का दैनिक व्यवहार रखना चाहिए और कठिन शारीरिक या मस्तिष्क परिश्रम करने वाले को ३ छटांक। इससे अधिक व्यवहार करने से रुधिर का प्रयोग होगा और नाना प्रकार के रक्त-रोग उत्पन्न होंगे।

**भोजन की मात्रा**

इस विधि स्नेहरक्त आहार में एक छटाँक से डेढ़ छटाँक तक की नित्य की मात्रा होनी चाहिए। वसा की अधिकाई से या तो आहार भली भाँति नहीं पचता, और दस्त

आने लगते हैं और या मेद की बहुतायत से भी शरीर स्थूल हो जाता है, (अधिक मोटापा भी एक बीमारी है।)

(कर्बोज और शर्करयुक्त भोजनों से भी शरीर में उष्णता और चरबी उपजती है और बल प्राप्त होता है। अतएव एक युवा मनुष्य के लिए रात दिन में तीन पाव भोजन इसी प्रकार का होना चाहिए। परन्तु इसकी अधिकता भी स्वास्थ्य-घातक है। पाचन क्रिया में गड़बड़ी हो जाती है, दस्त आने लगते हैं। अधिक काल तक शकर का व्यवहार रहने पर मधुमेह हो जाता है।)

लवणयुक्त भोजन हमारे स्वास्थ्य के लिए अतीव आवश्यक हैं। इनसे एक तो आहार के पचने में सहायता मिलती है। दूसरे रक्त, मांस, हड्डी और शरीर के अन्य अंशों के लिए इसकी आवश्यकता होती है। तोला भर से लेकर ढाई तोला तक नमकीन अंश भी अहर्निश हमारे भोजन के साथ शरीर तक पहुँचना आवश्यक है। नमक के सिवा शाक भाजी तरकारी और ताजे फलों का भी व्यवहार रखना चाहिए, जिससे लवण अंशों की आवश्यकता पूर्ण हो जावे। आलू, बथुवा गोभी, गाजर, मूली, शलगम उत्तम तरकारियाँ हैं।

पानी का प्रयोग भी आहार पचने और मलोत्सर्जन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। पानी की मात्रा भी दो ढाई सेर होनी

चाहिए। पानी की अधिकता से, अधिक ठंडे पानी से जठराग्नि पर प्रभाव पड़ता है, पाकस्थली निर्बल हो जाती है और पाचन क्रिया ठीक नहीं हो पाती। उत्तम तो यह है कि आहार के बीच में थोड़ा थोड़ा पानी पिया जाए और आहार के दो तीन घंटे पश्चात् इच्छानुसार पानी पिया जाए।

आहारों में सर्वोत्तम आहार दूध है, इसमें अनेक अंश पाए जाते हैं। बालकपन और किशोरावस्था में जब कि शरीर वृद्धि पर हो, उसका प्रयोग विशेषतया होना चाहिए।

आहार के लिए नियम से रहना आवश्यक है। जब तक भूख न लगे खाना न खाना चाहिए। बच्चों को तीन तीन घंटे के अन्तर पर और जवानों को साढ़े चार या पाँच घंटे पश्चात् खाना लाभ-दायक है। इससे कम समय में खाने से आमाशय बलहीन हो जाता है, और अन्न ठीक पचता नहीं। निर्बल व रोगी मनुष्यों को तीन तीन या चार चार घंटे पश्चात् थोड़ी थोड़ी मात्रा में सूक्ष्म आहार करना चाहिये, जिससे सुगमता से पच जाए। भूख बिना लगे कदापि न खाना चाहिए। और तुरन्त के मास्तिष्क और शारीरिक परिश्रम करने के उपरान्त, अथवा चिन्ता या भय की दशा में, क्योंकि ऐसी दशाओं में रक्त में आरोग्य-नाशक अंश उत्पन्न हो जाते हैं और हृदय उसको दूर करने के प्रयत्न में लगे रहने

भोजन के समय

के कारण आमाशय को आहार की ओर प्रवृत्त नहीं करता और भूख खुलकर नहीं लगती।

शीत-काल में ऐसा भोजन खाना चाहिए जिससे शरीर में उष्णता और बल का संचार हो। मिठाई कर्बोज वाले पदार्थ, अण्डे, मछली, घी मक्खन और मांस अधिक खाने चाहिएँ। ग्रीष्म में इन वस्तुओं का प्रयोग अल्प मात्रा में होना चाहिए। ग्रीष्म में स्वभावतः क्षुधा कम लगती है, इसी कारण उष्ण वायु में शरीर की उष्णता कम निकलती है, अतएव देह की शारीरिक उष्णता स्थापित रखने के लिए कम ईंधन की आवश्यकता होती है। अतएव इस ऋतु में रसीली और ठंडी वस्तुएँ खानी चाहिएँ। अधिक ठंडे पानी से सदा बचाव रखना चाहिए, क्योंकि उसका प्रभाव आमाशय के लिए भला नहीं होता।

**आहार में ऋतु-चर्य्या**

वर्षा-ऋतु में, और मुख्यतः उस काल में जब जल-वायु प्रतिकूल होवे अथवा, विशूचिका का प्रकोप होवे, दोनों समय भोजन में पियाज और सिरके का व्यवहार करना चाहिए "गन्धकाम्ल" (सुलफूरिक ऐसिड) अर्थात् गन्धक के तेजाब के तीन चार बूँद पानी में मिला कर पी लेने से हैज़े के कीटाणु मर जाते हैं और भोजन पच जाता है।

**आहार पाचन का ढंग**

हम जो आहार खाते हैं, वह सब एक बार ही नहीं पच जाता, किन्तु आहार के पाँचों अंश पृथक् पृथक् होकर पचते हैं। प्रकृति ने प्रत्येक अंश को पच जाने के लिए पृथक् पृथक् सामग्रियाँ और स्थान नियत किया है। आहार पाचन की एक लम्बी श्रेणी है, जिसका पहला खंड मुख से आरम्भ होता है। जब हम कौर चबाते हैं, तो मुख से एक प्रकार का द्रव-रस निकलता है, जो आहार में मिल कर उसको एक प्रकार की शक्कर में परिवर्तित कर देता है और उसके निशास्ता को पचाता है, मुख से चलकर ग्रास "आहार प्रणाली" या भोजन की नली में प्रवेश करता है और शनैः शनैः आहार प्रणाली की तरलता शोषण करता हुआ आमाशय में पहुँचता है। आमाशय में जब आहार जा पहुँचता है तो दूसरी पाचन क्रिया आरम्भ होती है। पाकस्थली मे एक रस उत्पन्न होता है जो आहार के अंशों में लय होकर उसे बहुत पतला कर देता है। यहाँ से आहार थोड़ा थोड़ा करके आँतों में प्रवेश करता है। पाकस्थली से निकलते ही उसे एक तो पित्ता का रस प्राप्त होता है, जो आहार के चिकने अंश के पाचन में सहायता देता है, दूसरा आँतों का रस जो आँतों की ग्रन्थियों से पैदा होता है, और तीसरा अग्न्याशय का रस। क्लोम के रस में तीन प्रकार के अंश होते हैं, उसका एक सारांश तो मांसोत्पादक आहार को पचाता है और दूसरा कर्बोज व शर्करयुक्त

आहार को, तीसरा स्नेहाक्त आहार को। इस भांति, जो अंश मुँह और पाकस्थली में पचने से रह जाते हैं, वह आँतों में पहुँच कर सम्पूर्ण रूप से पच जाते हैं। यह तीसरी पाचन क्रिया है।

आँतें आहार के लाभकारी और पचे हुए अंशों को ग्रहण करती हैं, और यकृत, वृक्क इत्यादि में फेरती हैं और मल को विसर्जित करती है।

आहार कैसे शरीर में लय होता है

आहार के अंश जब समुचित रीति से पच जाते हैं, तो शरीर में लय होने प्रारम्भ होते हैं। तुम पढ़ चुके हो कि तिल्ली, यकृत, आमाशय और आँतों में अनेकानेक नसें फैली हुई हैं, जिनमें अंशों को लय करने की शक्ति है। अतएव परिपक्व आहार के अनेकों अंश यकृत द्वारा शिरा की भिन्न भिन्न शाखाओं के द्वारा लय होकर यकृत में पहुँच जाते हैं और रक्त में तद्रूप हो जाते हैं। तैल युक्त अंश आँतों की शोषक नसों के द्वारा लय हो कर शिरा वर्त्ती रक्त में मिल जाते हैं, और पुनः रक्त के द्वारा शरीर के अंग प्रत्यंग में पहुँच कर लय हो जाते हैं इस रीति से आहार शरीर में तल्लीन हो जाता है। शेष अनावश्यक अंश, जिनका शरीर में अधिक ठहरना स्वास्थ्य को हानि कारक होता है मूत्र, मल, और पसीना के रूप में निकल जाते हैं। इस प्रक्रिया का नाम "पूर्ण परिपक्वता" है।

## मुख्य मुख्य भोजनों में आहार के अवयवों का प्रतिशत अनुपात ।

(टिप्पणी)—खाने में जितना घी व मसाले अधिक होंगे उतना ही वह देर में पचेगा ।

| नाम भोजन | पानी | मांसोत्पदक अंश | स्नेहात्त अंश | शर्करयुक्त अंश | लवणयुक्त अंश | पचने की अवधि |
|---|---|---|---|---|---|---|
| गौ-दुग्ध | ८६ | ४·५ | ४ | ५ | ·५ | २ घंटा |
| दही | ९१·६ | २·९१ | १·०९ | ३·९ | ·५ | २ ,, |
| मक्खन | ७·५ | १ | ९० | — | १ | ३½ ,, |
| मलाई | ६६ | २·७ | २६·७ | २·८ | ·७ | ४ ,, |
| अण्डा | ७४·४ | १४ | १०·५ | — | १·५ | २½ ,, |
| अजा-मांस (गोश्त बकरी) | ६९·७ | २०·५ | ७·५ | — | १·३ | ३ ,, |
| मेष-मांस (गोश्त मेंढ़ा) | ७४ | १९ | ५ | — | २ | ३ ,, |
| कुकट-मांस (गोश्त मुर्गा) | ७४ | २१ | ३·८ | — | १·२ | ३½ ,, |

| नाम भोजन | पानी | मासोत्पादक अंश | स्नेहाक्त अंश | शर्करयुक्त अंश | लवणयुक्त अंश | पचने की अवधि |
|---|---|---|---|---|---|---|
| मछली का मांस | ७९ | १९ | १ | — | १ | २ ,, |
| गुर्दे | ७६·५ | २१·२ | ९ | — | १·४ | ४ ,, |
| करेजी | ६८·६ | २६·३ | ३·९ | — | १·२ | ४ ,, |
| तरकारी | ९१ | २ | ·५ | ५·८ | ·७ | ३½ ,, |
| आलू | ७४·४ | २ | १·६ | २१ | १ | ३ ,, |
| सेम | १४ | २४·४ | १·४ | ५७ | ३·६ | ३ ,, |
| चुकन्दर | ८७ | २·५ | २ | ७·५ | १ | ३½ ,, |
| शलजम | ८८ | २०·५ | २ | ६·५ | १ | ,, ,, |
| गाजर | ८५·४ | २·६ | ४·५ | ८·४ | १ | ,, ,, |
| मूँग | १६·२ | २३·६ | १·४ | ५१ | २·५ | ३ ,, |

| नाम भोजन | पानी | मांसोत्पादक अंश | स्नेहात्क अंश | शर्करयुक्त अंश | लवणयुक्त अंश | पचने की अवधि |
|---|---|---|---|---|---|---|
| मटर हरा | ५५ | ७ | १ | २५ | २ | ३½ ,, |
| गेहुँ का आटा | १४ | १४·६ | १·२ | ८६·६ | १·६ | ,, ,, |
| मटर सूखा | १५ | २२ | २ | ५८·८ | ३ | ४ ,, |
| मकई | १३·५ | ९·९ | ६·७ | ६८·२५ | १·४ | ४ ,, |
| माप (उड़द) | १२·४४ | २४·७३ | १·३६ | ५०·३० | ७·१७ | ३ ,, |
| चना | ११·३५ | २१·६७ | २·६ | १·१८ | २·२० | ४ ,, |
| चावल | १० | ५·५ | ·८ | ८३·२ | ·५ | १½ |
| जौ का आटा | १५·५ | ११·९९ | २·२ | ६६·१ | १·९१ | ४ |

## अभ्यास

(१) भोजन क्यों खाया जाता है और आहार क्या वस्तु है, और इससे क्या आवश्यकता है ?

(२) शरीर के रासायनिक अंश बताओ ?

(३) आहार के रासायनिक अंश वर्णन करो और बताओ कि मनुष्य के शरीर के रासायनिक अंशों में इनसे क्या सम्बन्ध है ?

(४) ओषजन व अम्बुजन व ओषजनव कार्बन और कावन व अम्बुजन के संयोग बताओ।

(५) मांसोत्पादक आहार, स्नेहात्क आहार, और कर्वोज व शर्कर युक्त आहार के कर्म और गुण बताओ ।

(६) लवण युक्त अंशों का शरीर में क्या काम है ?

(७) आयस (लोहे) के, चूने और शैलिका के अंश हमारे शरीर में क्या काम करते हैं ?

(८) आहार की दैनिक मात्रा किस अनुपात से होनी चाहिए, और उसका कारण क्या है ?

(९) दूध का व्यवहार क्यों लाभकारी है ?

(१०) आहार में समय का विचार किस प्रकार रखना चाहिए और क्यों ?

(११) ऋतु के विचार से आहार में क्या विशेष बातें होनी चाहिएँ ?

(१२) आहर कैसे पचता है ?

(१३) आहार पाचन की श्रेणी का विस्तृत वर्णन लिखो।

(१४) आहार पाचन के लिए प्रकृति ने क्या क्या सामग्रियो रक्खी हैं ?

(१५) आहार कैसे शरीर में लय होता है ?

(१६) निम्न लिखित खाद्य द्रव्यों के यौगिक अवयवों का मिश्रणांश, बताओ:—

गेहूँ, चावल, जौ, चना, मटर, अजा मांस, मछली का मांस, मक्खन, दूध, मलाई, दही, अण्डा, और तरकारी।

(१७) किस प्रकार के आहार देर में परिपक्व होते हैं ?

## (ख) पानी

पानी के मिश्रणांश और तत्व

पानी एक संयुक्त तत्व है जो ओपजन और अम्बुजन से एक और दो के अनुपात से मिल कर वना है, स्वास्थ्य के लिए यह अतीव आवश्यक तत्व है। आहार के विना भी मनुष्य केवल पानी के आधार वर्षों जीवित रह सकता है परन्तु पानी के विना कुछ दिनों में मर जाएगा। पानी वायु से कई अंश भारी होता है।

२१२ मान के ताप मापक यन्त्र अर्थात् थर्मामीटर से यदि देखा जाए तो ज्ञात होगा कि, ३२ तापमान पर पानी जम जाता है, और २१२ तापमान पर खौलने लगता है।

**विमल जल के सद्गुण** शुद्ध और स्वच्छ जल में निम्न लिखित बातें होनी चाहिएँ:—

(१) किसी प्रकार का गन्ध न हो।

(२) वह रंग रहती हो। कहीं २ पानी बहुत गहरा होता है वहाँ उसका रंग नीला दृष्टि पड़ता है, परन्तु वह उसका वास्तविक रंग नहीं है।

(३) वह सुस्वादु हो, कड़वा अथवा नमकीन न हो।

(४) वह विमल पारदर्शक व चमकीला हो।

(५) उसके तल पर चिकनाई या परमाणु तैरते न दृष्टि पड़ें और यदि उसको किसी कांच के गिलास में भर कर रख दिया जाए, तो जब तक चाहे रखा रहे कोई वस्तु उस पर जमने न पाए।

(६) वह भारी न हो, ताकि आहार को सुगमता से पचा सके, और कोई रोग जैसे घेघा या पत्थरी इत्यादि न उपजे। भारी पानी वह है, जिस में चूना मैगनेशियम इत्यादि का अंश घुला होता है।

अनुभव से ज्ञात होगा कि, हमारे शरीर में पानी की मात्रा

**शरीर में पानी के काम** ७० प्रति शत होती है। ३० प्रति शत के भाव से अन्य वस्तुएँ। रक्त में उसकी मात्रा ८० प्रति शत होती है।

(१) पानी पक्वाहार को पचा करके उसे शरीर में लय हो जाने के योग्य बनाता है।

(२) पचे हुए आहार को शरीर में लय होने में सहायता मिलती है।

(३) यह रक्त को पतला करता है।

(४) शरीर के विषमय पदार्थों को श्वास, मल, मूत्र, और पसीने के रूप में निकाल देता है। तुम देखोगे कि जो साँस हमारे फेफड़ों में प्रवेश करती है, उसमें इतना पानी नहीं होता, जितना भीतर से बाहर आने वाले श्वास में होता है। उसके परीक्षण के लिए शीशे पर मुँह की भाप डालो तो शीशे पर पानी की महीन महीन बूँदें जम जाएँगी और शीशा धुंधला हो जाएगा।

(५) यह प्रायः नाड़ियों और पट्ठों को कोमल और लचकीला बनाता है।

**स्वास्थ्य-नाशक पानी**

पानी यद्यपि प्राण के लिए बड़ी ही आवश्यक वस्तु है, परन्तु लेश मात्र असावधानी से यह भीषण स्वास्थ्य-नाशक हो जाता है, कुछेक मुख्य-मुख्य बातें, जो कि पानी को आरोग्य नाशक बना देती हैं नीचे लिखी जाती हैं:—

(१) मलिन जल। (२) दुर्गन्धित जल। (३) गड्ढों और पोखरों का पानी। (४) ऐसे तालाबों का पानी, जिसमें लोग नहाते धोते हों या पशु पानी पीते हों, या सन्निकट ही

कूड़ा कतवार की राशी हो। (५) कच्चे कुओं का पानी जो बहुत समीप होते हैं। (६) बरसाती पानी जो भूमि पर एकत्र हो जाता है। (७) बस्ती के पास का नदी नालों का जल (८) ऐसे कूओं का जल, जिनके निकट लोग नहाते धोते हों, अथवा कूड़ा कतवार पड़ा हो, अथवा मोहरी या नावदान हो। (९) जिस पानी पर चिकनाई तैरती हो। (१०) नमकीन या खारा पानी। (११) बरफ़ का पानी। (१२) मैले और खुले हुए घड़ों, बरतनों, और गन्दी मश्कों का पानी।

**जल शीतल करने का उपाय**

ग्रीष्म ऋतु में ठंडे पानी को बहुत जी चाहता है, उसके लिए लोग बर्फ़ का व्यवहार करते हैं, परन्तु बर्फ़ से प्यास नहीं बुझती, और स्वास्थ्य पर कुप्रभाव होता है। इस लिए पानी को यदि अन्य उपायों से शीतल कर लिया जाए या झाल लिया जाए तो यह दोनों दूषण दूर हो जाएँ:—

(१) पानी को एक कोरे घड़े में भर दिया जाए, उस पर तर किया हुआ फुलालैन या तीन चार पर्त्त किया हुआ कोई दूसरा कपड़ा लपेट कर घड़े को किसी ऊँचे स्थान पर लटका दिया जाए थोड़ी देर में पानी ठंडा हो जाएगा।

(२) एक नाँद में पानी भरो फिर उसमें बत्ती दार शोरा, नमक, व नौसादार पानी के तोल के १ ५/६ के अनुपात से छोड़ दो।

तदुपरान्त, झर्झर ( सुराही ) में पानी भर कर उसका मुँह वन्द करदो और उस पर कम्वल या फुलालैन का दो तीन पर्त्त का कपड़ा वाँध कर इस सुराही को नाँद में डाल दो। एक घण्टे में सुराही का पानी वरफ़ की भाँति हो जाएगा ॥

## अभ्यास

(१) पानी के मिश्रण अंश और गुण वतलाओ।

(२) अच्छे पानी की क्या पहचान है?

(३) पानी हमारे शरीर में क्या क्या काम करता है?

(४) किस प्रकार का पानी स्वास्थ्य-विनाशक होता है?

(५) पानी के विषय में क्या सावधानी वर्तनी चाहिए?

(६) पानी ठंडा करने के क्या उपाय हैं?

---

## (ग) शुद्ध वायु

शुद्ध वायु एक संयुक्त तत्व है, जो विविध भाँति के वाष्पों से मिल कर वनती है। उसके मिश्रण अंशों का अनुपात निम्न लिखित है:—

वायु के मिश्रण अंश

१—ओपजन २०·९६ प्रति शत।

२—तत्व्यंजन ७९ ,, ।

३—आँगारिकाम्ल ०४ ,, ।

४—इन तीन अंशों के सिवाय आधुनिक अन्वेषणों के अनुसार ओपजन में कुछ सूक्ष्म मात्रा में पानी और दो एक अंश भी पाए जाते हैं।

ओषजन रंग हीन, गंध हीन, और सूक्ष्म पदार्थ या वाष्प है।

ओपजन

जिसमें कोई स्वाद नहीं, कोई रुचि नहीं, परन्तु इस पर जीवन का आधार है। अग्नि में, दीपक मे, सारांश यह कि प्रत्येक ज्योति में ओपजन का अंश है। जो ज्वाला बन कर जलता हुआ दिखाई पड़ता है। यदि ओपजन न हो तो जीवन नहीं रह सकता, परन्तु यह भी स्मरण रहे कि विशुद्ध ओपजन में भी जीना असम्भव है।

ओपजन की भाँति तर्व्यजन भी रंग रहित, गन्ध रहित, व

तर्व्यंजन

स्वादु रहित वाष्प है। यह स्वयं, यद्यपि अंश रहित वस्तु है और इसमें कोई विशेष गुण नहीं है, परन्तु ओपजन के तीक्ष्ण प्रभाव को मंद करने के लिए और इसे तरल बनाने के लिए इसकी आवश्यकता होती है। ओपजन की तीक्ष्णता का अनुमान इससे किया जा सकता है कि इसे हलका करने के लिए लगभग चौगुनी तर्व्यजन के मिश्रण की आवश्यकता होती है।

वायु का तीसरी और अतीव विषैला अंश आँगारिकाम्ल है जो

आँगारिकाम्ल

ओपजन और अँगारजन या कर्बन के मेल से उत्पन्न होती है। इसे कर्बन द्विओपद भी

कहते हैं। यह यद्यपि एक स्वच्छ और रंगविहीन वाष्प है, परन्तु इसमें एक सूक्ष्म सा स्वाद और गन्ध होता है। इसके विष की प्रखरता का इससे अनुमान हो सकता है कि वायु के प्रति ढाई हज़ार अंश में एक अंश इस वाष्प का होता है। आँगारिकाम्ल की वायु में प्रति शत '०४ से लेकर '०६ के अनुपात तक तो कोई विशेष स्वास्थ्य-नाशक प्रभाव नहीं होता, परन्तु यदि इसकी मात्रा '०६ से बढ़ जाए तो फिर वह प्राणघातक होजाता है।

वायु की शुद्धि का प्रबन्ध

आँगारिकाम्ल बहुतायत से प्राणी, वनस्पति तथा अग्नि-धूम्र या रजःकण इत्यादि के द्वारा ताजी हवा में फैलती रहती है, इससे अन्तरिक्ष मण्डल की सम्पूर्ण वायु को थोड़े ही समय में दूषित और स्वास्थ्य घातक हो जाना चाहिए था, परन्तु प्रकृति की ओर से उसकी शुद्धि या स्वच्छीकरण का प्रबन्ध है। धूप, वृष्टि, बिजली, आँधि और वनस्पति वर्ग और फूलों की सुगन्धियाँ सर्वदा इसकी शुद्धता में तत्पर रहती हैं। और इसके विषैले प्रभाव को दूर करती हैं।

वायु की दूषणता के कारण

शुद्ध वायु के दूषित और स्वास्थ्य-नाशक हो जाने के अनेक कारण हैं—[क] जीव वर्ग—(१) मनुष्यों और पशुओं के श्वास-प्रश्वास लेने से जो विषमय वायु निर्गत होती है। (२) पांस कूड़ा-करकट इत्यादि के रजःकण। (३) मूत्र, पुरीष, नाक, थूक

लीद, गोवर इत्यादि के रजःकण । (४) किसी स्थान पर जीव-जन्तु या मनुष्य समूह । (५) बधिकों (कसाइयों), मोचियों चर्मकारों, रंगरेजों इत्यादि की दुकानें, मिलें और कार्यालय, श्मशान, मरघट अथवा बूचड़खाने इत्यादि । (६) नगरों की घनी वस्ती । (७) रोगों और दुर्गन्धिपूर्ण मलिनताओं के कीटाणु [ख] वनस्पति वर्ग—(१) फूल-पत्तियों के रजःकण । (२) रात्रि के समय खेतों, जंगलों, वाटिकाओं, वृक्षों के नीचे का वायु-मण्डल जब कि ये आँगारिकाम्ल उत्क्षेपण कर रहे हों । [ग] अन्य कारण । (१) धुआँ (२) धुल-धुलेंड़ी या गर्द । (३) आग ।

**दूषित वायु का स्वास्थ्य पर प्रभाव**

दूषित और स्वास्थ्य-नाशक वातावरण में रहने से वहुत से दोष पैदा होते हैं—(१) शरीर निर्वल और क्षीण हो जाता है । (२) पाचक क्रिया बिगड़ जाती है और पाकस्थली अपना काम नहीं करती । (३) आहार घट जाता है, भूख खुल कर नहीं लगती । (४) निद्रा नहीं आती, मस्तिष्क भ्रान्त हो जाता है॥ (५) चित्त खिन्न और अधमरा रहता है । (६) सिर में पीड़ा रहती है । (७) काम-काज में दिल नहीं लगता और मनुष्य आलसी, प्रमादी रहता है । (८) बच्चों की वृद्धि रुक जाती है । (९) भाँति-भाँति की बीमारियाँ उठ खड़ी होती हैं, यथा—क्षय, जाड़ा-बुखार, विशूचिका, महामारी ( प्लेग ), चेचक, गंठिया, इत्यादि ।

शुद्ध और पवित्र वायु के लिए कुछ बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए:—(१) कमरा बन्द करके न सोना। (२) गन्दे मुहल्लों और सघन बस्तियों में न रहना। (३) निवास-स्थान के भीतर पशुओं को न बाँधना। (४) किसी बन्द कमरे में आग या कोयला न सुलगाना। (५) बन्द कमरे में पत्थर का कोयला लैम्प या मिट्टी के तेल की ढेरी जलाकर न सोना। (६) घरों के गच या दीवारों पर न थूकना। (७) घर का कोना-कोना खूब ही स्वच्छ रखना। (८) घर ऐसे हों जिनमें धूप और शुद्ध वायु भली भाँति आ सके। (९) शयन-कक्ष की खिड़कियाँ दिन रात खुली रक्खो। (१०) दुर्गन्धित स्थानों पर न बैठो। (११) घर के भीतर या आस-पास कूड़ा-कतवार न बटोरो। (१२) ऐसे स्थानों की वायु दूषित होती है, जैसे मिल, फैक्टरी, मरघट इत्यादि।

शुद्ध वायु के लिए सावधानी

घरों और गली-कूचों की स्वच्छता के लिए निम्नलिखित तीनों उपाय या तीन में से कोई एक किया जा सकता है जिससे वायु शुद्ध हो जाए। (१) चूना या कार्बोलिक पोडर भूमि पर बिछा दिया जाए। गन्धक या नीम की पत्ती सुलगाई जाए। (३) फ़िनाइल या काइडिज लोशन से भूमि को धोया जाय। पाखानों और नालियों को स्वच्छ करने के लिए फ़िनाइल का उपयोग किया जाए॥

वायु शुद्ध करने के उपाय

## अभ्यास

(१) वायु के मिश्रणांश क्या हैं और किस अनुपात से पाए जाते हैं ?

(२) वायु के मिश्रण अंशों में से प्रत्येक की विस्तृत व्याख्या करो ।

(३) वायु की शुद्धि के लिए प्राकृतिक प्रबन्ध क्या है ?

(४) शुद्ध वायु सदा ही अनुपात से क्यों पाई जाती है, और दूषित क्यों नहीं होती ?

(५) वायु किन दशाओं में दूषित होती है ?

(६) दूषित वायु का स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

(७) वायु के विषय में कौन सी सावधानी वर्त्तनी चाहिए ?

(८) मैदानों की अपेक्षा जंगलों की वायु में क्या बात होती है ?

(९) मिलों (पुतलीघरों) और सघन बस्तियों की वायु क्यों दूषित होती है ?

(१०) कानपुर के मुख्य शहर की जल-वायु तुम्हारे जान में कैसी होती है, और उसका क्या कारण है ?

(११) वायु शुद्ध करने के क्या उपाय हैं ?

# आठवाँ पाठ

## रोग और उनके कीटाणु

### (क)—मक्खी

१

२

३

४ ५
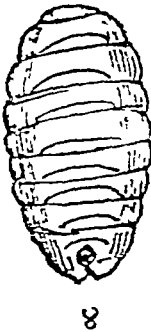
(१) अण्डा। (२) या (३) अंडे में निकले हुए बच्चे की आकृति।
(४) बच्चे की पूर्णावस्था। (५) जवान मक्खी।

छोटा सा जीव मक्खी मनुष्य का सब से भारी शत्रु है।

**मक्खी**

सैंकड़ों रोग और सहस्रों संहार इसी के श्री चरणों की कृपा से संसार में होते रहते हैं। इसके संक्षिप्त जीवन की घटनाएँ चित्ताकर्षक हैं।

मक्खी अण्डे से उत्पन्न होती है। एक मक्खी को जन्म लेने, जवान हो जाने, और सन्तान उत्पन्न करने के योग्य बन जाने में एक सप्ताह से लेकर दो सप्ताह तक की अवधि लगती है। एक मादा मक्खी एक ब्यांत १२० अण्डे देती है। जिनसे १०—१२ या १४ दिन तक के समयान्तर में १२० मक्खियाँ हो जाती हैं। यदि केवल १२० की गणना रक्खी जाए तो दूसरे पक्ष में इन १२० मक्खियों से १४४०० मक्खियाँ हो जाएँगी। इस प्रकार यह क्रम दिन प्रति-दिन बढ़ता ही जाएगा। मक्खी के अण्डों का एक ही झोल नहीं होता किन्तु, इतने ही अण्डे कई ठौर देती है। यह दुर्गन्ध में उत्पन्न होता है, दुर्गन्धि में कालक्षेप करता है, और दुर्गन्धि ही में निवास करता है।

मक्खियाँ प्रत्येक भाँति की मलीनता और दुर्गन्धि पदार्थ में

**मक्खी का जन्म-स्थान**

उत्पन्न होती हैं। विशेषतः घोड़े की लीद में उन स्थानों में जहाँ मल एकत्रित होता हो। तुम देखोगे कि इस दुर्गन्धि पर महीन महीन श्वेत रंग के कण एक ओर रक्खे हैं, यही इन

मक्खियों के अण्डे हैं। जिनमें से दो तीन दिन में बच्चे निकल आते हैं। यदि इन मलीनताओं में से कोई वस्तु मक्खी को अण्डे देने के लिए उपयुक्त न मिली तो फिर सब प्रकार की सड़ने वाली वस्तु पर दुर्गन्धि में मिलती हैं अण्डे डालती है। इसकी घ्राण शक्ति बड़ी तेज होती है। यह सड़ने की गन्ध पर दूर दूर पहुँचती है।

मक्खी की शारीरिक रचना

एक अणु-वीक्षक यन्त्र के द्वारा यदि मक्खी के शरीर का निरीक्षण किया जाय तो ज्ञात होगा कि इसका सम्पूर्ण शरीर सूक्ष्म सूक्ष्म लोमों से ढका हुआ है। सर, टाँग, पेट आदि अंग प्रत्यंग पर बाल होते हैं। उसकी छः टाँगें होती हैं। उनमें वैसे ही काँटेदार काँटे होते हैं जैसे बड़े चींट या झींगर की टाँगो में मिलते हैं। मक्खी की टाँगों के सिरे पर एक गोल गद्दी सी होती है, जिसमें से एक चिपचिपा रस निकला करता है। यह रस उसे वस्तुओं पर उल्टा चिमट जाने और चलने में सहायता करता है।

मक्खी की शारीरिक वृद्धि की भिन्न भिन्न अवस्थाएँ

अण्डे से निकलने के पश्चात् मक्खी का रूप ऐसा नही होता जैसा उड़ते हुए। मक्खी का बच्चा अण्डे से निकलते समय एक लम्बा सा काला कीड़ा होता है, जिसके न सिर का पता चलता है न पैर का ठिकाना। हाथ पैर कुछ नहीं होते। चार पाँच दिन तक वह कीड़े उसी लीद या गोवर को, जिसमें जन्मते हैं

खाते रहते हैं। हरा रंग का हो जाने पर उनका शरीर भी पहिले की अपेक्षा मोटा और बलवान हो जाता है। यह अवस्था समाप्त होने के पश्चात् मक्खी के जीवन का दूसरा काया कल्प आरम्भ होता है। उनका रंग धूसर मटैला पड़ने लगता है। देह संकुचित होने लगती है। गोवर या लीद इत्यादि के ऊपरी धरातल को पार करके उसकी पेंदी में जा पहुँचती है, जहाँ वह अपना चोला बदलने लगती है। निश्चल व स्थावर होकर एक लम्बे अण्डे के रूप मे पड़ जाता है। इसी प्रकार चार पाँच दिन व्यतीत हो जाते हैं। उसके उपरान्त रूप परिवर्त्तन की तीसरी और अन्तिम अवस्था प्रारम्भ होती है। कोप के भीतर ही भीतर मक्खी की आकृति बनने लगती है। अब उसके पंख निकल आते हैं। टाँगें बाहर आती हैं। और सम्पूर्ण शरीर मक्खी के सदृश हो जाता है। जब पूर्ण देह बन चुकता है तो कीड़ा ऊपरी आवरण फाड़ कर निकल आता है। पंख व पैर स्वच्छ करके उड़ने लगता है। तीन चार दिन के पश्चात् उसकी अण्डे बच्चे देने की ओसरी आ जाती है। और वह वंश-विस्तार के कार्य में संलग्न हो जाती है।

**मक्खी किस प्रकार मारने वाला शत्रु है**

तुम पढ़ चुके हो कि, मक्खी एक अत्यन्त अपवित्र जीव है, जिसका समस्त जीवन ही दुर्गन्धि में बीतता है। मल, मूत्र, नाक, थूक, सड़ी गली वस्तुएँ यही इसके मुख्य भोजन हैं। हम

जानते हैं कि इन दूषित वस्तुओं में अत्यन्त विषमय कीटाणु भरे पड़े होते हैं जिनका हमारे शरीर में पहुँच जाना स्वास्थ्य हारी होता है, और उनसे नाना प्रकार के रोग उपजते हैं। जब कभी मक्खी इस प्रकार के दुर्गन्धित मलों पर बैठती है तो उनकी टाँगों और पैरों में सम्पूर्ण मल भर जाते हैं। यहाँ से उड़ कर जब वह हमारे खाने पीने की वस्तुओं पर बैठती है, तो वह विषैले और दुर्गन्धित रोगाणु उन वस्तुओं तक पहुँच जाते हैं, और उन्हें स्वास्थ्य-नाशक बना देते हैं। यह तो एक दशा हुई, अब दूसरी दशा पर ध्यान दो।

मक्खी निरन्तर बीट किया करती है। जिस पर बैठती है उसी पर बीट डाल देती है। अनुभव के लिए किसी ऐसे स्थान में, जहाँ मक्खियाँ अधिक एकत्र हुआ करती हैं, एक श्वेत अलगनी बाँध दो। एक सप्ताह के पश्चात् अलगनी काली पड़ जायगी। सम्पूर्ण अलगनी पर एक सिरे से दूसरे सिरे तक महीन महीन काले बुन्दे लगे होंगे। यह बुन्दे मक्खियों के बीट या विष्टा हैं। तुम समझ सकते हो कि मक्खी स्वयं अपनी उत्पत्ति और आहार के विचार से एक अशुद्ध अपवित्र जीव है। मक्खी की बीट तो कहीं अधिक दूषित, अपवित्र और जहरीली होगी। भोजन की जिन वस्तुओं को मक्खियों ने इस प्रकार अपवित्र और दुर्गन्धित कर दिया हो, वे कहाँ तक पवित्र हो सकती हैं इसे तुम स्वयं

समझ सकते हो। इसी लिए खाने के बरतन खुले और सीधे न रखने चाहिएँ। एक तीसरी दशा दुर्गंधि फैलाने की ओर है।

मक्खी का नियम है कि, जब किसी शुष्क वस्तु पर बैठती है, तो पहिले उसे तर करती है और फिर चाटती है। इस मन्तव्य के लिए वह अपने पेट के रस को मुँह से उगलती है। तुम जानते हो कि मक्खी के पेट के भीतर कैसे कैसे विषैले कीटाणु भरे पड़े हैं। इन कीटाणुओं से भोजन की क्या दशा होती होगी इसको स्वयं विचार सकते हो।

इस प्रकार मक्खियों से विविध भाँति में रोग एक से दूसरे और दूसरे से तीसरे को लगते रहते हैं, और गाँव गाँव नगर नगर में फैल जाते हैं। साधारणतः, विशूचिका, तिजारी, अपच्य संग्रहणी, पेचिश, लाल बुखार, चेचक, मोती झरा, फुन्सियाँ, फोड़े, आँख उठना, क्षय, प्लेग इत्यादि रोग मक्खियों के कारण एक दूसरे तक पहुँचते हैं। ध्यान रखो कि मक्खियों की सन्तान वृद्धि न होने देना उनके मारने से यही सुगम और लाभकारी उपचार है।

## मक्खियों से बचने के उपाय

(१) खिड़कियों और द्वारों पर परदे पड़े रहें, इस लिये कि मक्खियाँ न आने पाएँ।

(२) रोग ग्रसितों के पास मक्खी का प्रवेश न होना चाहिए।

(३) अपने घर में या घर के पास पास कूड़ा, आम की गुठलियाँ, तरकारी के छिलके, या किसी प्रकार की सड़ी हुई वस्तुएँ इकट्ठी न होने दो और न किसी वस्तु को सड़ने दो।

(४) सारी सड़ने वाली वस्तुओं को या तो जला दो अथवा दूर खेतों में बिखुरा दो ताकि इकट्ठी न हो जाएँ और मक्खियों को अण्डे देने का अवसर ही न मिले।

(५) सारी खाद्य सामग्री को शीशे की अलमारियों या जाली-दार "अहारों" में बन्द रक्खो, खुला कभी न रहने दो।

(६) संडासों और मुहरियों को निरन्तर फिनाइल से धुलवाते रहो।

(७) लीद गोबर इत्यादि को या तो फिकवा दो अथवा उन पर मिट्टी का तेल या चूना डलवा दो और फिर किसी से बाहर खेतों में फेंकवा दो।

(८) रसोई घरों के कमरों के द्वार पर सर्वदा परदे डाले रक्खो। भोजनालयों के द्वार तो सदा जालीदार होने चाहिएँ।

(९) घर का कोना कोना अत्यन्त स्वच्छ और पवित्र रहना चाहिए॥

## अभ्यास

(१) मक्खी का संक्षिप्त वर्णन करो।

(२) मक्खियों के अण्डों की दशा वर्णन करो और बताओ कि मक्खियाँ किन किन स्थानों पर अण्डे देती हैं?

(३) मक्खी की शारीरिक रचना का वर्णन करो।

(४) मक्खी की शारीरिक उत्तरोत्तर वृद्धि का वर्णन अण्डे से निकलने के समय से लेकर जवानी तक करो।

(५) मक्खी किस किस प्रकार से दुर्गन्धि और मलिनता फैलाती है?

(६) मक्खी किस कारण से हमारी कराल शत्रु है, और उसके द्वारा कौन कौन बीमारियाँ फैलती हैं?

(७) मक्खी के द्वारा रोग फैलने का क्या हेतु है?

(८) शुष्क वस्तुओं को मक्खी किस रीति से खाती है?

(९) मक्खियों से बचने के क्या क्या उपाय हैं?

---

## (ख)—पिस्सू

पिस्सू

कुत्ते, बिल्ली और खरगोश इत्यादि जीवों के बालों में अनेक छोटे छोटे कीड़े रहा करते हैं। कभी बालों के ऊपर आ जाते हैं और कभी बालों में घुस कर खाल में चिपक जाते हैं। इन्हीं कीड़ों का नाम "पिस्सू" है।

मुर्गियों और बत्तकों के परों में भी इसी प्रकार के परन्तु उनसे छोटे कीड़े रक्खा करते हैं उन्हें "कुटकी" कहते हैं।

जो लोग पहाड़ों पर रहते हैं, वह जानते हैं, कि छोटे छोटे भुनगे के समान जीव रात के समय मनुष्यों के बिछौने में घुस

जाते हैं और सारी रात घोर कष्ट देते हैं । प्रातःकाल होते ही यह कूद कूद कर दीवार और द्वार की दराजों में छिप रहते हैं । यह भी पिस्सू कहलाते हैं ।

खटमल की भाँति पिस्सू का भी आहार रक्त है । जिस पशु या मनुष्य को यह दुःखदायी कीड़े चिमट जाते हैं, उसका रक्त निरन्तर चूसा करते हैं । पिस्सू और मच्छरों में यह भेद है कि मच्छर उड़ सकते हैं पिस्सू चिमटे रहते हैं । यह छः-सात इंच से अधिक नहीं उछल सकते ।

नर पिस्सू

पिस्सू का बच्चा अण्डे में

मादा पिस्सू
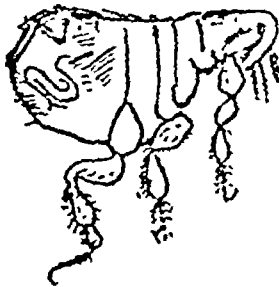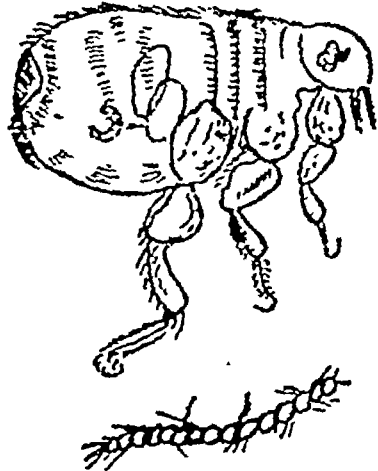
बच्चा अण्डे से निकलने के पश्चात्

पिस्सू के एक प्रकार को "ताऊनी पिस्सू" कहते हैं। सन्

**प्लेग के पिस्सू** १८९७ ई० में डाक्टर सायमण्ड ने यह खोज की थी कि ताऊन चूहों के द्वारा फैलता है। जो पिस्सू चूहों में पाए जाते हैं वही इस रोग को मनुष्यों में फैलाते हैं। उस समय से यह पिस्सू "मूसों के पिस्सू" भी कहलाते हैं, क्योंकि यह विशेषता चूहों के वालों में रहते हैं, और उनका खून पिया करते हैं। ताऊनी पिस्सू छोटी-सी नन्ही-नन्ही कुटकियाँ होती हैं, जो भूमि के कीटाणु से चूहों में पैदा होती हैं। इन पिस्सुओं का टाँगे बहुत लम्बी-लम्बी होती हैं, जिनमें पाँच जोड़ होते हैं, दोनों ओर एक कटिया-सी निकली होती है। इनका रंग मटमैला, चिपटा और सिर पर बाल होते हैं। पीछे के अंगों की अपेक्षा आगे वाले अंग छोटे व पतले होते हैं। ताऊनी पिस्सू का मुँह मच्छर के सदृश होता है और उसमें एक जोड़दार सींग होता है, जो भीतर से खोखला रहता है। इस पोले के नीचे दो डंक होते है, जिनका आकार दाँतेदार आरी की भाँति होता है। जब पिस्सू रक्त पीना चाहता है, तो उन डंकों को चूहे की खाल में चुभो देता है और रक्त शोषण करने लगता है। पहिले रक्त सींग के पोले में आता है वहाँ से चलकर मुँह और पेट में पहुँचता है। नर का डीलडौल मादा की अपेक्षा छोटा होता है। नर की पूँछ किंचित ऊपर को उठी होती है और मादा की पूँछ नीचे को दबी हुई। पिस्सू अण्डे से उत्पन्न होते

हैं और चार पाँच कायाकल्पों में पूरे पिस्सू बनते हैं। मादा एक झोल में आठ से लेकर १२ तक श्वेत, चिकने और अण्डाकार रूप के अण्डे देती है, जिनमें शीत-ऋतुओं में ११ दिवस में और ग्रीष्म ऋतुओं में अनुमानतः इसकी आधी अवधि ही में बच्चे निकल आते हैं। अण्डे से निकलने के पश्चात् पूरा पिस्सू बनने में लगभग १५ दिन लगते हैं। पिस्सुओं की मादा शुष्क मिट्टी या मलीन गच अथवा अन्य दुर्गन्धित स्थलों में अण्डे देती है। अण्डे से निकलने के पश्चात् यह लम्बे और छोटे-छोटे कीड़े होते हैं, जिनका रंग श्वेत या पीत मिश्रित होता है। उस समय इनकी टाँगें नहीं होतीं वरन् शरीर पर १३ शाखाएँ-सी फूटी होती हैं। यह बच्चे सड़ी-गली वस्तुओं पर जीवन निर्वाह करते हैं और भूमि या दीवारों की दरारों में निवास करते हैं। लगभग ७ दिन के उपरान्त यह नई मिट्टी के कणों का आवरण बनाकर अपना तीसरा चाला बदलते हैं और ५ से ८ दिवस के अवसर में चौथा रूप धारण कर लेते हैं और पूरे पिस्सू हो जाते हैं।

मच्छर की मादा ही काटती है, परन्तु पिस्सू को नर व मादा दोनों काटते हैं और रक्त पान करते हैं। यों तो वह चूहों के शरीर में रहते ही हैं, परन्तु जब चूहा मर जाता है तो यह उसको छोड़ देते हैं और दूसरे चूहों की टोह में निकल पड़ते हैं, क्योंकि मृतक चूहे की देह में रक्त पीने को नहीं मिलता। जब अधिक भूखे होते हैं, तो मनुष्य और दूसरे पशुओं पर भी धावा कर देते

हैं। चूहों का नियम है कि जहाँ एक-दो चूहे ताऊन से मरें तो शेष स्वस्थ चूहे जंगल को चल देते हैं।

डाक्टर जरोलिया ने खोज की है कि, ताऊनी कीटाणु या

ताऊनी कीटाणु

ताऊन के रोगाणु चूहों के पिस्सूओं के उदर में बढ़ते फैलते रहते हैं और सात, आठ दिन तक पेट में जीवित रहते हैं। इस समयान्तर में जब पिस्सू मनुष्य को काटता है, तो उसके मुँह की लसी के साथ यह कीटाणु भी निकल आते हैं और त्वचा पर एकत्र हो जाते हैं। जब काटने के कारण खुजलाहट जान पड़ती है तो मनुष्य खुजलाता है और यह कीटाणु खाल में प्रवेश कर रक्त में पहुँच जाते हैं। बहुधा यह कीटाणु पिस्सू के कण्ठ में एकत्र होकर बढ़ते व पलते रहते हैं। जब कण्ठ का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है तब वह भूख से व्याकुल होकर जोर जोर से काटता है। इस चेष्टा में कटीाणु कण्ठ से निकल कर मुख मार्ग से उस अंग पर आ जाते हैं जिसे पिस्सू काटता है।

जो लोग नंगे पाँव फिरते हैं या मिट्टी में काम करते हैं उन पर पिस्सूओं का आक्रमण करने की अधिक सुविधा मिलती है और यही कारण है कि ताऊन की गिल्टी जाँघ या पार्श्व (बग़ल) में निकला करती है।

## अभ्यास

(१) वि    ओं और मच्छरों की तुलना करो।

(२) ताऊनी पिस्सुओं का अण्डे से लेकर जवानी तक का वर्णन करो।

(३) ताऊनी पिस्सुओं की बनावट कैसे होती है?

(४) ताऊनी पिस्सु मनुष्यों पर कैसे और किस समय धावा करते हैं?

(५) ताऊनी रोग के कीटाणुओं का पिस्सुओं से क्या सम्बन्ध है?

(६) पिस्सुओं के काटने से कैसे ताऊन हो जाता है?

(७) ताऊनी कीटाणु मनुष्यों तक क्योंकर पहुँचते हैं?

---

# (ग)—मशक दँश या मच्छर
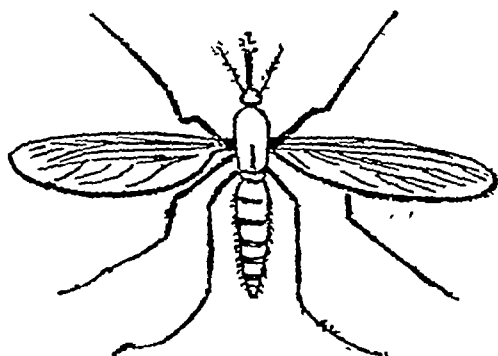
१—मलेरिया मच्छर की मादा।
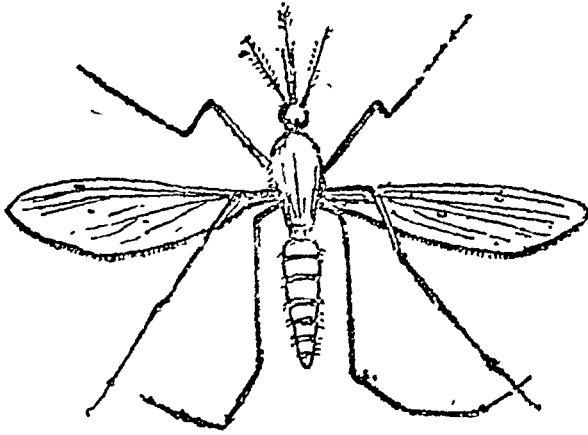
२—मलेरिया मच्छर ।
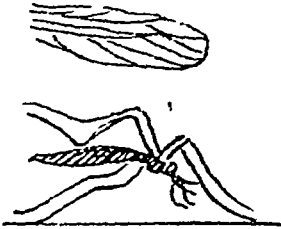
३—घरेलू मच्छर और उसका पर ।

४—मलेरिया के मच्छर के काटने के समय का चित्र ।
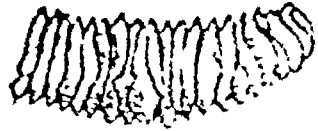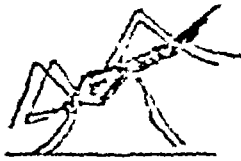
५—मलेरिया का मच्छर बैठा हुआ और उसका पर।

६—मच्छर का अण्डा।

७—अण्डों का झोल (समूह)
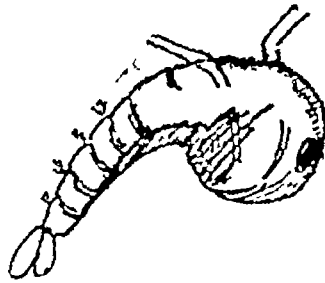
८—बच्चा अंडे से निकल रहा है।
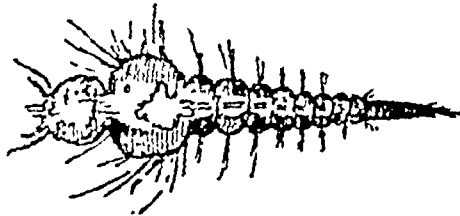
९—मच्छर का बच्चा पानी में।

मक्खी की भाँति मच्छर भी एक अत्यन्त दुःखदायी जीव है। इसके डेढ़ दो सहस्र प्रकार होते हैं। परन्तु यहाँ केवल मलेरिया के मच्छर का वर्णन किया जायगा और तुलना के लिए संक्षिप्त वृत्तान्त घरेलू मच्छर का भी किया जाएगा।

मच्छर

जो मच्छर हमारी वाटिकाओं, गृहों और दूसरे स्थलों पर दृष्टिगोचर होते हैं वह साधारण प्रकार के होते हैं। इनके पैर काले होते हैं और शरीर के धब्बे नहीं होते। यह जब दीवार पर बैठता है, तो या तो दीवार के धरातल के समतल रहता है अथवा कुबड़ा। धुएँ और प्रकाश से भागता है। यह घरों के संकीर्ण कोनों में, फूल के गमलों में, भीगे स्थलों में, पानी के बरतनों में, नालियों और वृक्षों के खौंडरों में निवास करते हैं। मच्छर में विशेष बात यह है कि उसका श्वास आने-जाने का अंग उसकी पूँछ के पास होता है।

साधारण मच्छर

नर मच्छर पत्तियों का रस चूस-चूसकर पेट भरता है, परन्तु मादा मांसहारी होती है। वह मनुष्यों और पशुओं को काटती और उनका रक्त चूसती है।

मच्छर की उत्पति अण्डे से है। मादा पानी में काले-काले सूक्ष्म अण्डे देती है, जो एक पंक्ति में पानी में तैरते रहते हैं। बच्चे निकलकर कई

मच्छर की उत्पत्ति

दिन तक पानी में मछलियों की भाँति तैरा करते हैं। यदि इस पानी में मेंडक व मछलियाँ हुईं, तो कुछ तो अनेक आहार बन जाते हैं, और शेष कीड़े जवान होकर उड़ने लगते हैं। जिस पानी में मच्छर के बच्चे हों, उसमें यदि कोई वस्तु फेंकी जाए, तो पानी की तरंग से डर वे डुबकी मार जाते हैं। मच्छर भी मक्खी की भाँति कई काया-पलट करता है। अण्डे से कीड़ा, कीड़े से गोला, गोले से बच्चा बनता है और तब कहीं मच्छर बनता है। एक मच्छर से भी एक ऋतु में कई करोड़ मच्छर उत्पन्न हो सकते हैं। मच्छर ऐसे पानी में उत्पन्न होते हैं, जो रुका रहता है।

मलेरिया का मच्छर

मलेरिया मच्छरों की भी उत्पत्ति और रहने-सहने की गति वैसी ही है जैसी कि साधारण मच्छरों की। कर्म, गुण स्वभाव तथा रूप में अन्तर है। पैरों पर श्वेत या भूरे रंग की चित्तियाँ होती हैं। जब यह बैठता है तो ऐसा जान पड़ता है कि मानो शिर के बल खड़े हैं। जंगलो, भीगे स्थलो, तराई के प्रदेशों, नदी, नालों इत्यादि के कछारों में यह मच्छर बहुत होते हैं। इसी कारण ऐसे स्थानों के निवासी मलेरिया के रोग में बहुधा ग्रस्त रहते हैं। उसके अण्डे काले धूसर रंग के होते हैं, और वह चार-चार गुच्छों में मिलकर तिनकों और पत्तियों में चिपक जाते हैं, जो पानी पर तैरा करते हैं। वर्षा के उपरान्त अनेक छोटे २ और महीन

महीन कीड़े कुओं और तालावों में उतरते दृष्टि पड़ते हैं। यह मच्छरों के वच्चे होते हैं, जो बढ़कर मच्छर वन जाते हैं।

**मलेरिया क्या वस्तु है ?**

मलेरिया एक विशेष प्रकार के कीटाणु हैं, जो रक्त में पैदा हो जाते हैं। यह मच्छरों के द्वारा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के रक्त में पहुँच जाते हैं। इन कीटाणुओं के द्वारा जो रोग उत्पन्न होता है, उसे "मलेरिया" कहते हैं।

**मलेरिया के कीटाणु**

मलेरिया के रोगी का एक बूँद रक्त लेकर अणुवीक्षण यन्त्र से देखा जाय तो ज्ञात होगा कि लाल रक्त-कणों के भीतर काली-काली विन्दुएँ हैं, जिनमें से कोई गोल ढंग के हैं, कोई अर्द्धचन्द्राकार। यही मलेरिया रोग के कीटाणु हैं जो वढ़कर शरीर रक्त में व्याप्त हो जाते हैं।

**मलेरिया के कीटाणुओं का सम्बन्ध मच्छर से**

मच्छर की मादा रक्त चूस कर पेट भरती है। यदि वह व्यक्ति मलेरिया का रोगी हुआ और उसके रक्त में मलेरिया के कीटाणु विद्यमान हुए तो रक्त के साथ वह कीटाणु भी मच्छर के पेट में चले जाते हैं। यहाँ जाकर वह अण्डे-वच्चे देते हैं और सन्तति-विस्तार करते हैं। मच्छर के आमाशय की दीवार फट जाती है और वह कीटाणु मच्छर के सम्पूर्ण शरीर में रक्त के

द्वारा व्यापक हो जाते हैं। जिस समय यह मच्छर किसी व्यक्ति को काटता है तो उसके मुँह के रस के साथ यह कीटाणु भी खाल में आ जाते और दंशम स्थान के द्वारा दंशित व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। इस प्रकार मलेरिया का विष मच्छरों के द्वारा एक से दूसरे तक, दूसरे से तीसरे तक लगातार पहुँचता रहता है। अस्तु, ज्ञात हुआ कि जाड़ा-बुखार का रोग प्रसार करने के मूल कारण मच्छर हैं।

मलेरिया की बीमारियाँ

मलेरिया के कीटाणुओं के कारण अनेक रोग उत्पन्न होते हैं, मुख्य प्रकार तो ठंड लग कर ज्वर होने का है चाहे वह दैनिक हो अथवा तिजारी या चौथिया। जब बुखार पुराना हो जाता है तो दूसरे रोग उत्पात करते हैं। यथा-तिल्ली बढ़ जाना, यकृत् का सूजन, अधकपारी की पीड़ा, जंघा की पीड़ा, पक्षाघात, रक्त की न्यूनता, यकृत्-निर्बलता, आमाशय निर्बलता, पेचिश व दस्त, कास-श्वास या पुरानी खाँसी, दृष्टि-क्षीणता इत्यादि-इत्यादि।

मलेरिया का ज्वर क्रम नियम से क्यों होता है?

मलेरिया का ज्वर ओसरी बाँध कर आता है उसका कारण यह है कि यह कीटाणु विशेष विशेष अवसर पर शरीर में भ्रमण करते हैं और घूम फिर कर रक्त के लाल कणों में चले जाते हैं। जिस समय यह दोनों

से निकल कर रक्त में घुसते हैं ज्वर चढ़ता है और जब पुनः लौट जाते हैं तो ज्वर उतर जाता है।

यह कीटाणु मनुष्य की प्लीहा और यकृत में अथवा हड्डियों की गुरियों में जाकर घुसे रहते हैं, ऐसी दशा में रोगी भला चंगा रहता है, किसी को सन्देहमात्र नहीं होता कि यह रोगाक्रान्त है। यदि किसी प्रकार कभी उसका आरोग्य नष्ट हुआ और वह बलहीन हुआ तो यह कीटाणु निकल पड़ते हैं और रक्त में द्रुत वेग से दौड़ मचाने लगते हैं।

## मच्छरों से रक्षा

मलेरिया के मच्छरों से बचने के लिए इन बातों पर ध्यान देना चाहिए।

(१) मच्छरदानी (नीशार) लगा कर सोना चाहिए।

(२) सोते समय शरीर पर तेल मलना चाहिए।

(३) पैर में ऊनी मौजे पहिनना चाहिए और नंगी देह न बैठना चाहिए।

(४) कमरों में पंखों का प्रबन्ध रखना चाहिए।

(५) दूषित और अंधियारे घरों में न रहो।

(६) घरों के कोनों में और अल्मारियों के नीचे झाड़ू दी जाए।

(७) दिन के समय कोठरियों के द्वार खोल दो, ताकि प्रकाश और वायु के कारण मच्छर भाग जाएँ और सायंकाल

से प्रथम ही किवाड़ बन्द कर दो जिससे मच्छर कमरे में न घुसें।

(८) घर प्रशस्त खुले और हवादार हों ताकि प्रकाश और वायु पूरी मात्रा में पहुँच सकें और भूमि में आर्द्रता न उत्पन्न हो।

(९) कमरों में गन्धक, गुगुल, असगन्ध. और अकरकहाँ इत्यादि सुलगाने से मच्छर मर जाते हैं और बचे खुचे भाग जाते हैं। नीम की पत्ती और उपले सुलगाने से भी यही लाभ होते हैं।

(१०) घरों में या घरों के आस पास पानी न देना चाहिए, कूड़े नाँदि, हौज (कुण्ड), और नालियाँ सब सदा सर्वदा स्वच्छता से घरों के पास के गड़हे या अन्धे कुओं को पाट देना चाहिए।

(११) जिन स्थानों पर मच्छरों की उत्पत्ति के साधन प्रस्तुत हों वहाँ घर न बनवाना चाहिए।

(१२) घरों में ऐसे बरतन न रहें जो छूँछे हों और जिनमें सील का प्रवेश हो।

(१३) तालावों, पोखरों इत्यादि में जहाँ मच्छर उत्पन्न होते हैं यदि थोड़ा सा मिट्टी का तेल या पैरेफिन छोड़ दिया जाए तो उसकी चिकनाई पानी पर चद्दर की भाँति फैल

जाएगी । पानी में मच्छर के अण्डे बच्चे जो कुछ होंगे मर जाएँगे । क्योंकि तेल के कारण उनको श्वास लेना दुस्तर हो जाएगा । एक तोला मिट्टी का तेल सौ वर्ग फ़ीट जल-तल के लिए पर्य्याप्त है ।

(१४) तालावों मे मछलियाँ और बत्तकें छोड़ दी जाएँ क्योंकि यह मच्छरों के अण्डों-बच्चों को खा लेती हैं ।

## अभ्यास

(१) मच्छर के कितने प्रकार होते हैं । मुख्य मुख्य प्रकारों का नाम और उनकी पहिचान की रीति बताओ ।

(२) मच्छरों और अन्य जीवों में साँस लेने के विषय में क्या अन्तर है ?

(३) मच्छरों का पूरा जीवन-चरित्र वर्णन करो ।

(४) मच्छर कैसे स्थानों पर रहा करते हैं और कहाँ उत्पन्न होते हैं ?

(५) मलेरिया के मच्छरों में साधारण मच्छरों से क्या भेद है ?

(६) ज्वर-जूर्ति का रोग किस ऋतु में और कैसे स्थानों पर होता है ?

(७) मलेरिया क्या वस्तु है ?

(८) मलेरिया रोग के कीटाणुओं का वर्णन करो ।

(९) मलेरिया के कीटाणुओं का मच्छरों का क्या सम्बन्ध है ?

(१०) मलेरिया से कौन कौन सी बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं ?

(११) मलेरिया के ज्वर में और अन्य ज्वरों में क्या अन्तर है, और उसका कारण क्या है ?

(१२) आड़े के बुख़ार से बचने से क्या उपाय हैं ?

(१३) कुनैन क्या वस्तु है ?

(१४) मेलेरिया का रोग किस रीति से फैलता है ?

(१५) तालाबों को मच्छरों से परिष्कार करने के क्या उपाय हैं ?

## (घ)—जूँएँ ( चीलर )

**जूँ**

पिस्सुओं की भाँति जूँ भी एक रक्त पीने वाला कीड़ा है। इस कीड़े का सम्बन्ध मनुष्य से है। जूँ सदा मैल और गन्दगी के कारण उत्पन्न होती है। उसके दो प्रकार होते हैं। जो कीड़े शरीर की मलीनता और दुर्गन्धि के कारण वस्त्रों में रहते हैं और मनुष्य की देह का रक्त चूसा करते हैं उनको "चिलुआ या चीलर" कहते हैं और जो कीड़े बालों में पैदा होते हैं और शिर का रक्त पीते हैं उन्हें "जूँ" कहते हैं।

जूँ

**जूँ की उत्पत्ति**

जूँ अण्डों से उत्पन्न होती हैं। तुम ने देखा होगा कि जिन लोगों के केश बड़े बड़े होते हैं और वह मलीन रहा करते हैं, न स्वच्छ करते हैं न कंघी करते हैं तो उनके बाल चिपक जाते हैं और झील सा बन
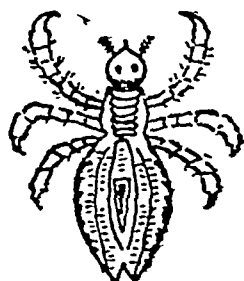
जाता है। यदि ध्यान पूर्वक देखा जाए, तो इन वालों पर श्वेत रंग के सूक्ष्म, महीन महीन दाने जान पड़ेंगे। यही जूँएँ अण्डे हैं। जिनसे उनका वंश विस्तार होता है। इस प्रकार चीलर कपड़े की सीवनों में रहा करते हैं और वहाँ अण्डे बच्चे देते हैं।

जूँएँ या चीलर जब रक्त पीने के लिए काटते हैं, तो उस स्थान पर जलन और कलबलाहट होने लगती है। और जब मनुष्य उनको खुजलाता है तो खरोंच पड़ जाते हैं और बहुधा खुजलाते खुजलाते घाव हो जाता है। जिससे बड़ी यन्त्रणा होती है। जूँ के द्वारा एक प्रकार का ज्वर भी होने लगता है, और जूँएँ चीलर जब बहु संख्यक हो जाते हैं तो एक से दूसरे तक, और दूसरे से तीसरे तक पहुँच जाते हैं और पास के उठने बैठने वालों को भी दुःख में फंसाते हैं।

जुओं की विशेषताएँ

जुएँ और चीलर की सबसे भारी औषधि शरीर और वस्त्रों की स्वच्छता है। साफ सुथरे मनुष्यों के जुएँ चीलर कुछ नहीं पड़ते।

जुओं की चिकित्सा

यदि वस्त्रों में चीलर पड़ जाएँ तो उन्हें खौलते हुए पानी में कुछ देर तक डाल देना चाहिए। इस से वे मर जाती हैं। यदि सिर में जुएँ पड़ जाएँ तो पैरेफिन या मट्टी का तेल अथवा तारपीन का तेल दोनों मिला कर

सोते समय शिर में लगा लिया जाए। और सिर पर टोपी दे ली जाए या रुमाल बांध लिया जाए, और प्रातः काल साबुन और उष्ण जल से शिर को धो डाला जाए। इस प्रकार ३ या ४ दिन के प्रयोग से सिर स्वच्छ हो जाएगा। यदि सिर में घाव हो गया हो तो नारियल का तेल अथवा वेसलीन लगाना चाहिए। जूँ के अण्डे (लीख) दूर करने के लिए बालों में सिरका लगा कर महीन दाँतों की कंघी से शनैः शनैः केशों को स्वच्छ करना चाहिए॥

### अभ्यास

(१) जूँओं का वर्णन करो।

(२) जूँ किस प्रकार बढ़ती और पलती है?

(३) चीचड़ और जूँ में क्या अन्तर है?

(४) जूँ से हम को क्या कष्ट पहुँचता है?

(५) जूँ और चीचड़ों (चिचड़ियों) की क्या चिकित्सा है?

---

Printed by L. Moti Ram, Manager, at the Mufid-i-'Am Press, situated at Chatterji Road, Lahore and published by Rai Sahib Lala Sohan Lal, Managing Proprietor, Rai Sahib M. Gulab Singh & Sons, Lahore.